राजधर्म सङ्गोष्ठी

(जुलाई २०२०)

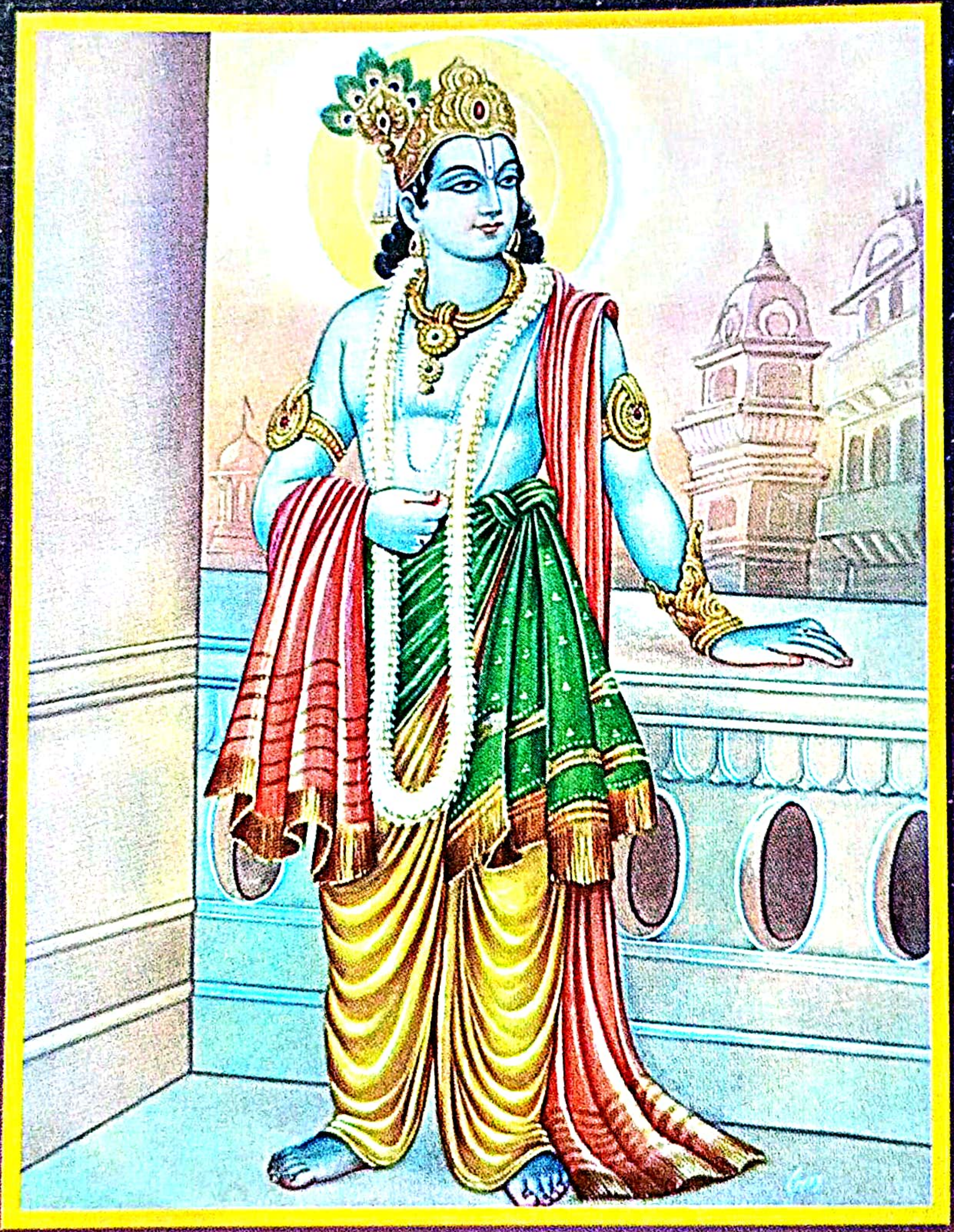

ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रवचन

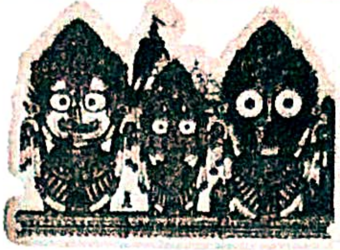

श्री हरिः

श्री गणेशाय नमः

राजधर्म सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रवचन)

हमारा लक्ष्य :-

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवा परायण, स्वस्थ और सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाज की संरचना

सम्पादन – आदित्यवाहिनी हरियाणा

|| श्रीहरिः ||

|| श्रीगणेशाय नमः ||

राजधर्म सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

विषयानुक्रमणी

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	राजधर्म सङ्गोष्ठी (दिवस १)	1
२.	राजधर्म सङ्गोष्ठी (दिवस २)	19
३.	राजधर्म सङ्गोष्ठी (दिवस ३)	49

इस प्रवचन में निम्नलिखित विषयों का समावेश है -

- व्यष्टि जीवन की सार्थकता समष्टि हित में
- भगवान् के प्रिय कौन?
- दिव्यता के आधान के लिये वैदिक सिद्धांत का आलम्बन आवश्यक
- सनातन सिद्धांत सर्वोत्कृष्ट है तो जातिगत भेद क्यों?
- प्रकृति प्रदत्त भेद के सदुपयोग की क्षमता भौतिवादियों में नहीं होती
- वर्णाश्रमव्यवस्था में सबकी जीविका जन्म से सुरक्षित
- वैदिक वाङ्गमय के अनुसार राजनीति की परिभाषा
- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की परिभाषा
- तर्पण और संध्यावन्दन का रहस्य
- महानगरों से हानि
- महाभारत के अनुसार मंत्रिमंडल का वर्णन
- व्यासपीठ द्वारा स्वस्थ क्रान्ति
- भगवत्पाद शङ्कराचार्य महाभाग द्वारा शासनतंत्र का शोधन
- व्यासपीठ का दायित्व क्या है
- सिद्ध और साध्य कोटि के धर्म
- अपने प्रमाद को दूर करने की आवश्यकता
- सद्भावपूर्वक संवाद के माध्यम से सैद्धांतिक निष्पत्ति
- मन के साथ अपना सम्बन्ध कैसा होना चाहिए
- व्यक्तिगत जीवन और परिवार में सद्भावपूर्वक संवाद आवश्यक
- ज्ञानचक्षु, दिव्यचक्षु और स्वचक्षु
- मनः कल्पित विधा के आलम्बन से विस्फोट
- अहिंसा के गर्भ से भारत का विभाजन
- नीति के प्रभेद
- देहात्मभावभावित शिक्षापद्धति के कारण आध्यात्मिक विकास का मार्ग अवरुद्ध
- समाधि की सिद्धि को अपने जीवन में और समाज में उतारने की क्षमता रखने वाला ही रामराज्य ला सकता है।
- अभी भारत को चार्वाक राज्य भी प्राप्त नहीं

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

राजधर्म सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(दिवस १)

मान्य महानुभावोंने आस्था और अपनत्वपूर्वक सराहनीय भावोंको समय की सीमा में प्रस्तुत किया। विज्ञान पर सङ्गोष्ठी का समायोजन सम्पन्न हुआ। अर्थशास्त्र पर भी गोष्ठी का समायोजन सम्पन्न हुआ। राजधर्म पर सङ्गोष्ठी का प्रारम्भ हुआ है। विश्वस्तर के, राष्ट्रीयस्तर के महानुभावोंने अब तक जिन भावोंको व्यक्त किया है, उनको सुनकर मुझे एक अद्भुत आह्लाद प्राप्त हुआ है। मैं उसे व्यक्त करना उचित समझता हूँ।

छल बल डंके की चोट से स्वतंत्रता के कुछ वर्ष पहले से विदेशी षड्यंत्र के ग्रास बने हुए व्यक्तियों ने वेदादि शास्त्रों के प्रति, मनुस्मृति के प्रति, पुराणों के प्रति पर्याप्त अनास्था उत्पन्न करने का प्रयास किया। लेकिन मैं इस बात को लेकर अत्यंत प्रमुदित हूँ, विश्वस्तरके मान्य वैज्ञानिकोंने अर्थशास्त्र के जानकारोंने और आज की सङ्गोष्ठी में राजनीतिके मर्मज्ञों ने वेदादि शास्त्रों के प्रति, सनातन सिद्धांत के प्रति जो आस्था व्यक्त की है उससे लगता है कि दिशाहीन राजनेताओं के विदेशी षड्यंत्रकारियों के चपेट में बौद्धिक जगत् अब

तक नहीं आ पाया है। यह बहुत ही आह्लाद की बात है, इसको लेकर मैं बहुत प्रमुदित हूँ।

एक संकेत करता हूँ - (संस्कृत श्लोक 3:10) **हमारा आपका जो यह स्थूल शरीर है, यह सूक्ष्म शरीर का अभिव्यञ्जक है**। सूक्ष्म शरीर में पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, अंतःकरण है, प्राण है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर वेदान्त प्रस्थान के अनुसार दोनों ही आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी के कार्य हैं। और जो कारण शरीर जिसको अविद्या कहते हैं, जिसकी स्फुट अभिव्यक्ति सुषुप्ति में होती है वह माया का ही एक स्वल्प रूप है। तो मैंने संकेत किया कि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर पर विचार करें तो समष्टि से ही इन तीनों शरीरों की अभिव्यक्ति हुई है। **और जैसे व्यापक आकाश घटगत परिलक्षित होता है तो उसे घटाकाश कहते हैं, वैसे ही जीव भी सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का एक उज्जवल अंश सरीखा है जो कि स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर के योग से जीव कहा जाता है**। वस्तुतः है वह परमात्मस्वरूप चिदाकाश ही है। अब तक मैंने दार्शनिक धरातल पर इस तथ्य को उद्भासित किया कि समष्टि से ही व्यष्टि की संरचना हुई है। व्यष्टि का समूह समष्टि है, यह मान्यता तो आजकल है लेकिन समष्टि से ही व्यष्टि की अभिव्यक्ति हुई है इस पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। इसलिए व्यष्टि जीवन की सार्थकता समष्टि हित में सन्निहित है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने एक वचन दो

बार अभिव्यक्त किया है - **"सर्वभूत हिते रताः"**। **भगवान् उस पर लट्टू हो जाते हैं, प्रमुदित होते हैं जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में सन्निहित है**। सबके हित का मार्ग प्रशस्त करने पर अपना हित हो ही जाता है। और एक विचित्र बात है श्रीमद्भगवद्गीता के बाहरवें अध्याय का अनुशीलन कीजिये - **"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।।"** जो भी लक्षण भगवान् के भक्तों के बताए गए हैं, जिस पर भगवान् स्वयं रीझ जाते हैं, उन भक्तों को बहुत प्रिय मानते हैं, वह क्या हैं? **सबके पोषक हैं** या नहीं ? इसका मतलब कर्मकांड की दृष्टि से हम विचार करें तो श्राद्ध, तर्पण, पञ्चमहायज्ञ, ये सब जो हैं सबके हित में प्रयुक्त और विनियुक्त हैं। उपासना कांड की दृष्टि से विचार करें तो - **"अद्वेष्टा सर्वभूतानां"** ये जो लक्षण हैं, भगवान् के स्वभाव को, प्रभाव को अपने जीवन में अभिव्यक्त करने की विधा वह भी सबके हित में संलग्न है। और जो ज्ञान कांड की दृष्टि से विचार करें तो आत्मा ब्रह्म स्वरूप है, सब का अधिष्ठान है, इसका अर्थ है कि परिच्छिन्नता का पोषक न तो कर्मकांड है, न उपासना कांड है, न ज्ञानकांड है। इस दृष्टि से हमको वैदिक वाङ्मय को देखना चाहिए।

एक मैं संकेत करता हूँ - पिछले सत्रों में भी मैंने व्यापक रूप से उधर श्रोताओं का ध्यान केन्द्रित किया था। चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जितनी भी कहीं दिव्यता परिलक्षित है, उसका मूल

कारण क्या है इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है — वेदादि शास्त्र सम्मत कर्मकांड, उपासना कांड और ज्ञान कांड। कल्पना कीजिये **वेदादि शास्त्र सम्मत कर्मकांड, ज्ञान कांड, उपासना कांड को तिलांजलि दे दें, इसी ढंग से भावुकता में, राग - द्वेष के चपेट में, अज्ञान के चपेट में आकर इनकी उपयोगिता न समझें तो केवल अपनी बुद्धि से उद्भासित विकास की परिभाषा, उसके क्रियान्वन की विधा अभिशाप बनेगी जैसे कि आजकल बन** रही है। इसलिए मैंने संकेत किया - **कहीं भी दिव्यता का आधान करना हो तो वैदिक सिद्धांत का आलम्बन लेना ही चाहिए**। अर्थ की संगोष्ठी में मैंने एक भाव व्यक्त किया था, मान्य महानुभावों का ध्यान उधर केन्द्रित हुआ या नहीं लेकिन वाजपेई जी इत्यादि जो वक्ता थे उनका ध्यान अवश्य केन्द्रित हुआ है। पहले से भी वह बहुत ही प्रबुद्ध रहे हैं। 99% अर्थ का स्रोत तो आजकल भौतिकवादियों को पता ही नहीं है। अर्थ का स्रोत जो हम लोगों को शत-प्रतिशत मालूम है, आधुनिक जगत् में जो देहात्मवादी हैं, कम्युनिज्म की धारा में भौतिकवाद की धारा में रहने वाले हैं, बुरा न मानो होली है, 99% अर्थ के स्रोत का अर्थोपलब्धि का ज्ञान ही उनको नहीं है। और 1% जो अर्थ की परिभाषा उनके हृदय में सन्निहित है उसे भी क्रियान्वित करने की क्षमता उनके जीवन में नहीं है।

मैं एक संकेत और इस संदर्भ में करना उचित समझता हूँ कि **वैदिक सिद्धांत के अनुसार अपने-अपने अधिकार की सीमा में अभिरुचि की सीमा में सबका पोषण सम्भव है, कोई किसी का अनावश्यक शोषक नहीं होता। कारण क्या है कि हमारा दार्शनिक आधार ही इतना उदार है और वैज्ञानिक है, सत्य है, तथ्यपूर्ण है कि उसको दूसरा कोई छू भी नहीं सकता।** उदाहरण मैं देता हूँ - एक भगवान् जो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं वही जगत् बनाते हैं और बनते भी हैं। सर्वरूपों में, स्थावर-जङ्गम प्राणियों के रूप में, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के रूप में भगवान् ही अभिव्यक्त हैं। छान्दोग्य श्रुति के अनुसार विचार करें - **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"**। गीता के अनुसार - **"वासुदेवः सर्वमिति"**। उपनिषदों के अनुसार - **"तदैक्षत, "बहु स्यां प्रजायेय"** , **"तदात्मान स्वयमकुरुत"** , इसका मतलब इससे उदात्त सिद्धांत क्या होगा ? मैंने संकेत किया कि सर्वरूपों में जब भगवान् ही अभिव्यक्त हैं, पृथ्वी के रूप में, जल के रूप में, तेज के रूप में, वायु के रूप में, आकाश के रूप में, दिक् के रूप में, काल के रूप में, स्थावर प्राणी के रूप में, जङ्गम प्राणी के रूप में, **"यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः"**

और **"उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।**

निज प्रभुमय देखहिं जगत् केहि सन करहिं बिरोध ।।" इसका अर्थ ये हुआ कि हमारे यहाँ तो समष्टि हित की भावना से भावित होकर ही सकल व्यवहार का विधान है।

एक संकेत मैं इस सम्बन्ध में और कर देना चाहता हूँ - प्रायः लोग कह सकते हैं कि जब इतना उदात्त सिद्धांत है, उपनिषदों के आधार पर मैंने बताया, कुछ महानुभावों ने **"वसुधैव कुटुंबकम्"** वाक्य का भी उच्चारण किया है, **"वसुधैव कुटुंबकम्"** भी महोपनिषद का ही वचन है, ये भी श्रुति ही है। **"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेषां मङ्गलं भूयात्"** यह वचन भी गरुड़ पुराण के अंतिम अध्याय का अंतिम श्लोक है। उदात्त सिद्धांत यही हो सकता है न **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** ; **"वासुदेवः सर्वमिति"** ; **"वसुधैव कुटुंबकम"**; **"सर्वे भवन्तु सुखिनः"** यह तो वैदिक वाङ्गमय की ही अभिव्यक्ति है, देन है। फिर एक विचित्र तथ्य है उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है- यदि इतना उदात्त सिद्धांत है तो फिर अमुक ब्राह्मण, अमुक क्षत्रिय, अमुक वैश्य, अमुक शूद्र, अमुक अंत्यज इस प्रकार का प्रकल्प क्यों चलाया गया? इसी को लेकर तो विद्वेष की सम्भावना है या विद्वेष का यह बीज है। इस पर भी गम्भीरतापूर्वक थोड़ा विचार करने की आवश्यकता है। (भागवत श्लोक 11:40) विचार कुशल जो मनीषी होते हैं वो काल्पनिक, मनःकल्पित, अदूरदर्शितापूर्ण विचार को ताक पर रखकर ही विचार करते हैं। इसका मतलब

"तत्वपक्षपातो हि स्वभावो धियां" बौद्धों का सिद्धांत है। तथ्य का, सत्य का, तत्त्वका पक्ष लेना जीव का या उसकी बुद्धि का स्वभाव होता है। सकल भेदभूमियों का सदुपयोग करता हुआ व्यक्ति निर्भेद परमात्मा को प्राप्त कर सके। निर्भेद परमात्मा का अर्थ है सत्, चित्, आनन्द। जिसे प्रत्यगात्मरूप से वरण करने पर मृत्यु, जड़ता, दुःख से अतिक्रांत जीवन सदा के लिए निरस्त हो जाता है और देहत्याग के बाद सत्, चित्, आनन्द स्वरूप होकर ही शेष रहते हैं। और जीवन काल में **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय** की गाथा चरितार्थ होती है। इसका मतलब जितने भौतिकवादी हैं, कान खोलकर सुन लें, उनमें यह क्षमता नहीं है कि प्रकृति प्रदत्त जितने भेद हैं उनका वे सदुपयोग कर सकें। पाँच उंगलियों में भेद है लेकिन हथेली एक है। भेद के मूल में भेद हो ही नहीं सकता है। **"जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च। अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम्"** । **समस्त भेद भूमियों का अतिक्रमण करके व्यक्ति निर्भेद परमात्मा में मन सन्निहित कर सके इस भावना से भावित होकर जो वेदादि शास्त्रों में वर्णाश्रमोचित भेद का विधान किया गया है अगर उसे कोई स्वीकार नहीं करता है तो शिक्षा सबको सन्तुलित रूप में सुलभ हो, सम्भव नहीं, रक्षा सबको सन्तुलित रूप में सुलभ हो, सम्भव नहीं, अर्थ या जीविका सबको सन्तुलित रूप में सुलभ हो यह भी सम्भव नहीं; साथ ही साथ**

में एक संकेत करता हूँ सेवा का प्रकल्प भी सबको सन्तुलित रूप में सुलभ हो, सम्भव नहीं।

तो मैंने अब तक क्या कहा - सकल भेदभूमियों का सदुपयोग करता हुआ व्यक्ति निर्भेद परमात्मा तक पहुँच जाए, इसलिए जिस भेद की कल्पना वेद आदि शास्त्रों के द्वारा या वेदज्ञ मनीषियों के द्वारा की गई है उसका अनुपालन बहुत आवश्यक है, उचित है, अनिवार्य है। भगवत्पाद शिवावतार शङ्कराचार्य जी महाभाग का दार्शनिक सिद्धांत इतना उदात्त वेदादि शास्त्रों के आधार पर कि पूरा विश्व गुप्त या प्रकट उनके प्रति नतमस्तक। लेकिन **शङ्कराचार्य महाभागने भी एक संकेत किया भाष्यों के माध्यम से कि शास्त्रसम्मत भेद को आप स्वीकार नहीं करेंगे तो भेद के सदुपयोग की क्षमता ही नहीं होगी।** पूरा विश्व आज शापित है। मैं संकेत कर रहा हूँ डंके की चोट से - **भेद के सदुपयोग की क्षमता भौतिकवादियों में नहीं होती, और भेद का आलम्बन लेकर निर्भेद परमात्मा तक पहुँचने की क्षमता भी भौतिकवादियों में नहीं होती।** अब राजनीति या राजधर्म को लेकर मैंने अब तक यह संकेत किया कि जब समष्टि से ही व्यष्टि की संरचना हुई है और समष्टि भावापत्ति से ही व्यष्टि जीवन की सार्थकता है, तो ऐसी स्थिति में कोई किसी का अनावश्यक शोषक हो ही कैसे सकता है? इसका मतलब सबके पोषण का सिद्धांत सनातन धर्म में है और जो भेद की स्थापना की

गई है उसके पीछे भी हर प्रकार से लाभ उठाने की क्षमता होनी चाहिए। जैसे मैंने अर्थशास्त्र की गोष्ठी में एक प्रश्न कर दिया था उत्तर भी मैंने ही दिया, मैं एक संकेत करता हूँ - ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिये जिस व्यवस्था में हर व्यक्ति की जीविका जन्म से अरक्षित हो, जैसे कि आजकल। हर व्यक्ति की जीविका जन्म से जब अरक्षित होगी तो आर्थिक विपन्नता अनावश्यक विषमता स्वाभाविक होगी। हमारे माननीय मोदी जी हों या ट्रंप जी हों या जो भी हों सब बहुत लाडले प्यारे हमारे हैं लेकिन एक विचार करना चाहिए - आप आर्थिक सन्तुलन आर्थिक व्यवस्था की बात करते रहिए लेकिन पूरा विश्व तो अभिशप्त है। अभिशप्त क्यों है? कम से कम भारत आदि में जहाँ पर सनातन परम्परा से जीविका हर व्यक्ति की सुरक्षित थी उसका अपहरण न करते, उसके प्रति अनास्था उत्पन्न न करते.....एक दिव्यता होती। वो दिव्यता क्या होती? उस अवस्था में जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से सुरक्षित है वह रागमूलक नहीं, द्वेषमूलक नहीं, उपेक्षामूलक नहीं; दर्शन, विज्ञान, व्यवहार दृष्टि से अत्यंत उपयोगिता है उसकी, **जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से सुरक्षित है वहाँ आर्थिक विपन्नता अनावश्यक विषमता की सम्भावना नहीं है। और जहाँ, चाहे अमेरिका ही क्यों ना हो, जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से अरक्षित है वहाँ आर्थिक विपन्नता न हो अनावश्यक विषमता न हो यह सम्भव ही नहीं है।** राजनीति की परिभाषा मैंने विश्वस्तर पर दी, उसको थोड़ा खोल दूं

ताकि व्यक्ति की सनातन वर्णाश्रमव्यवस्था में स्वाभाविकी प्रीति, प्रवृत्ति हो सके - मैंने किन शब्दों का प्रयोग किया और क्यों किया उस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। **सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, संपन्न, सेवा परायण, स्वस्थ, सर्वहितप्रद व्यक्ति और समाज की संरचना - राजनीति की विश्व स्तर पर सनातन शास्त्रों के अनुसार हमने परिभाषा निर्धारित की**। कहाँ से इन शब्दों को लिया? वैदिक वाङ्मय से लिया। किस आधार पर लिया? ब्राह्मणों की दिव्यता को मैंने दो शब्दों में गुम्फित किया है - सुसंस्कृत, सुशिक्षित। क्षत्रियों की दिव्यता को एक शब्द में गुम्फित किया - सुरक्षित। वैश्यों की दिव्यता को एक शब्द में गुम्फित किया - समृद्ध/ सम्पन्न। शूद्रों की योग्यता को एक शब्द में गुम्फित कर दिया - सेवा परायण। सबसे क्या लिया - स्वस्थ। और अंत में सर्वहितप्रद व्यक्ति और समाज की संरचना। राजनीति की इसके समान या इससे बढ़कर स्वस्थ परिभाषा सम्भव ही नहीं है। समस्त वैदिक वाङ्मय का मंथन करके राजनीति की विश्वस्तर पर यह स्वस्थ परिभाषा हमारे यहां से स्थापित की गई है।

साथ ही साथ एक संकेत कर दूं राजनीति दिशाहीन कब होती है? अर्थ भी दिशाहीन कब होता है? विज्ञान भी दिशाहीन कब होता है? - सृष्टि की संरचना के प्रयोजन का ज्ञान न हो तब सब में भी

विसंगति आ जाती है। जीवन की सार्थकता के स्वरूप का विज्ञान न हो तो सबमें विसंगति आ जाती है।

सृष्टि की संरचना है ही क्यों - **बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानांऽसृजत् प्रभुः। मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च।।**

महाप्रलय के बाद महासर्ग के प्रारम्भ में सच्चिदानन्दस्वरूप करुणावरुणालय परमेश्वर आकाश, वायु, तेज, जल पृथ्वी से मंडित सृष्टि की रचना की और जीवों के अभुक्त कर्मों को फलोन्मुख करने की भावना से तथा उन्हें पुरुषार्थचतुष्टय से सम्पन्न जीवनयापन की योग्यता प्रदान करने की भावना से देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण से युक्त जीवन प्रदान किया। **'मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च'** (भागवत का वचन है यह) इसका अर्थ - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हो सके। राजनीति की स्वस्थ परिभाषा यही होगी, उसको क्रियान्वित करने का अर्थ भी यही होगा कि व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त हो सके। थोड़ा विचार कीजिये, मैंने परिभाषा पहले की भी थी, फिर सुनने की आवश्यकता है - भोग्य सामग्री का नाम अर्थ है। अंत में बहुत गम्भीरता से विचार करेंगे तो श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में अन्न की जो परिभाषा दी गई है - कोई भी भोग्य पदार्थ हमारे पास जब आएगा तब उसका नाम अन्न हो जाएगा। अन्न की बृहद् मीमांसा पृथु जी के चरित्र में श्रीमद् भागवत के चतुर्थ स्कंध में सन्निहित है। **भोग्य पदार्थ का नाम अर्थ है**। आस्तिक-नास्तिक उभय सम्मत अर्थ

की यह परिभाषा है। **भोग्य पदार्थ के समुचित सेवन से प्राप्त जो पुष्टि और तृप्ति है उसी का नाम काम है।** काम कोई अश्लीलता नहीं है। फिर से सुनिए - **काम का अर्थ है कि भोग्य पदार्थ के सेवन से जीवन में जो, देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण सहित जीव में जो पुष्टि और तुष्टि की जो निष्पत्ति होती है उसी का नाम काम है।**

धर्म क्या है? धर्म पर भी विचार करना चाहिए। **"धारणात् धर्म"** । धर्म के दो भेद हैं - एक सिद्ध कोटि का धर्म, एक साध्य कोटि का धर्म। 'धारणात् धर्म' - अर्थात् जो धारण करता है, वह धर्म है। धर्म से कैसे आप बचेंगे? पार्थिव प्रपञ्च को पृथ्वी, पृथ्वी को जल, जल को तेज, तेज को वायु, वायु को आकाश, आकाश को प्रकृति, प्रकृति को ब्रह्मतत्व / परमात्मतत्व / भगवत्तत्व धारण करने वाला है। अब इस धर्म की परिभाषा को कौन विमुख कर देगा? 'धारणात् धर्म' धर्म की सिद्ध परिभाषा यही है। कहाँ पर? विचार करें तो महाभारत के शांतिपर्व में, कर्णपर्व में और अमरकोश में, साथ-ही-साथ मत्स्यपुराण आदि में। अनुष्ठानात्मक साध्य कोटि का जो धर्म है, यज्ञ, दान, तप, व्रत इनकी उपयोगिता है। जीवन में इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण में अद्भुत बल और वेग का संचार करने की भावना से अनुष्ठेय कोटि प्रविष्ट यज्ञ, दान, तप, व्रत, योग आदि का विधान किया गया है।

तो हमने कहा कि धर्म क्या है?- **अर्थोपार्जन की वह विधा, विषयोपभोग की वह विधा जिसके फलस्वरूप जीवन दिशाहीन न हो और जीवन में वह अद्भुत बल और वेग का संचार हो कि व्यक्ति का मन परमात्मा तत्व की ओर, मृत्यु, दुःख, अज्ञता पर विजय पाने की ओर अग्रसर हो सके, उसी का नाम धर्म है।**

मोक्ष क्या है? - **जो कुछ मृत्यु है, जड़ है उससे, जो कुछ अज्ञता है उससे, जो कुछ दुख है, ताप है, वेदना है उससे पिंड छुड़ा कर सच्चिदानन्द मात्र होकर शेष रहना, यह मोक्ष है।**

राजनीति का लक्ष्य भी उन्माद नहीं है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि में सहभागिता है। एक वाक्य में और कहता हूँ - पूज्य गुरुदेव धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्र महाभाग कहा करते थे "**धर्म विहीन राजनीति विधवा है , विधवा के सदृश है। और राजनीति विहीन जो धर्म है वह विधुर के समान है**, जिसकी पत्नी दम तोड़ गई हो। एक दूसरे के पूरक हैं।" क्षात्र धर्म का नाम ही तो राजनीति है। मनुस्मृति का अवलोकन कीजिए- राज माने राजा। राजनीति का वर्णन मैंने आरंभ में दो ढंग से किया था - राजधर्म, राजविद्या, राजगुह्य। इतने शब्दों का प्रयोग भगवद्गीता में हुआ है। और राज का अर्थ है श्रेष्ठ, नीति का अर्थ है धर्म। राज का अर्थ होता है राजा, राजा का अर्थ होता है क्षत्रिय, क्षात्र धर्म का नाम

राजनीति है। उत्कृष्ट नीति का नाम राजनीति है, दण्डनीति का नाम राजनीति है, अर्थ नीति का नाम राजनीति है। **लौकिक उत्कर्ष, पारलौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ परमात्मा की प्राप्ति के अनुकूल शासनतंत्र की समुपलब्धि का नाम राजनीति है। उन्माद का नाम राजनीति नहीं है।** तो हमने एक संकेत किया सज्जनों कि राजनीति को राजनीति ढंग से परिभाषित करें।

अंत में एक संकेत और करते हैं कि "**राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई**" तुलसीदास जी ने राजनीति को केवल एक वाक्य में परिभाषित किया। अपने मनोरथ को, वह मनोरथ ऐसा नहीं कि अन्यों के लिए घातक सिद्ध हो, सर्वहित में जो प्रयुक्त, विनियुकत जो उपाय हैं, मनोरथ हैं मन में छिपाकर रखिए, उसको क्रियान्वित करने पर लोगों को मालूम पड़े कि इनके मन में यह भाव था। उन्मादपूर्ण राजनीति तो राजनीति है ही नहीं, इसका नाम तो बस अदूरदर्शिता की परिभाषा है। तो समय की सीमा में मैंने संकेत किया कि समष्टि से ही हमारा जीवन बना है, हमारे शरीर का उपादान कारण ही समष्टि तत्व है। जैसे ये ताम्र पात्र है तो ताम्र धातु से ही पात्र की संरचना हुई है इसी प्रकार हमारे जीवन जो स्थूल, सूक्ष्म शरीर है, कारण शरीर है यह तो समष्टि तत्व का ही एक व्यष्टि रूप है। और जो जीव है - "**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**" ; "**ईश्वर अंश जीव अविनाशी**" दृष्टि से हम भी समष्टि के एक अंश

सरीखे हैं, भगवान् के अंश से सरीखे हैं। इसका अर्थ समष्टि का ही एक मूर्त रूप, व्यक्त रूप हमारा आपका जीवन है। **समष्टि के एक इकाई घटक के रूप में ही हमको अपना जीवन प्राप्त हुआ है। तो इसका उपयोग और विनियोग सर्वहित में होना चाहिए, अपना भी कल्याण होगा दूसरों का भी कल्याण होगा।** तो कर्मकांड में तर्पण है, श्राद्ध है, बलिवैश्वदेव इत्यादि हैं, महायज्ञ हैं। हमने कहा संकेत किया सबके पोषण में उसका विनियोग है। उपासना कांड में देवताओं की आराधना करते हैं। साथ ही साथ '**अद्वेष्टा सर्वभूतानां**' - सकल प्राणियों के प्रति हमारे जीवन में स्नेह होता है, अपनत्व होता है, सबके हित में व्यवहार करने पर भगवान् संतुष्ट होते हैं। ज्ञानकांड में तो हम सबको आत्मस्वरूप ही समझते हैं। तो आत्मा और आत्मीय समझकर ही कर्मकांड, उपासना कांड और ज्ञानकांड का प्रकरण चलता है। केवल तर्पण को लेकर ही विचार कर लीजिए - मेरे द्वारा प्रदत्त जल के प्रभाव से, मंत्र, भावना, विधि और सामग्री के द्वारा तर्पण की सिद्धि होती है। **तर्पण के पीछे ही जो रहस्य छिपा है मेरे द्वारा प्रदत्त जल के प्रभाव से पृथ्वी, पानी, आकाश, वायु, अग्नि, दिक्, काल, स्थावर - जङ्गम प्राणी संतुष्ट हों तृप्त हों। जो हमारे सगे-सम्बन्धी पूर्व जन्म के जो हमको भूल गए, जिनको हम भूल गए, नरक में पड़े हुए प्राणी, स्वर्ग में गए हुए प्राणी, चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में कहीं भी कोई प्राणी हैं मेरे द्वारा प्रदत्त जल के प्रभाव से वो संतृप्त हों, वेदादि शास्त्र संतृप्त हों, सबके जीवन**

के पोषण में, सबकी तृप्ति में मेरे जीवन का उपयोग हो। कर्मेन्द्रियों का, ज्ञानेन्द्रियों का, अंतःकरण का, प्राणों का, मुझ जीव का उपयोग भी सबके हित में हो, इसी का नाम तो तर्पण है।

संध्यावन्दन भी क्या है - शक्ति के आधान की एक प्रक्रिया है। हम चक्षु और सूर्य की एकता का, वाक् और अग्नि की एकता का, मन और चन्द्रमा की एकता का जब चिन्तन करते हैं तब क्या होता है? आधिदैविक बल से हमारा जीवन सम्पन्न होता है।

अंत में - कोरोना की चर्चा बहुत हो रही है। ये आधिदैविक प्रकोप है। आप कितनी भी दवा बना लो, यह आधिदैविक प्रकोप है। हमने पृथ्वी को, जल को, तेज को, वायु को, विकास के नाम पर विकृत किया है। हमको शुद्ध गंध, शुद्ध रस, शुद्ध रूप, शुद्ध स्पर्श नहीं प्राप्त है। हमने नदियों को, जीवनी शक्ति प्रदान करने वाली प्रत्येक वस्तु को विकास के नाम पर बिल्कुल तिरस्कृत कर दिया है, उसके फलस्वरूप हमको यह विस्फोट प्राप्त हुआ है। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - दवा का प्रयोग होना चाहिए, रामदेव बाबा आदि ये सब मेरे बहुत प्रिय हैं, लेकिन विचार यह करना चाहिए कि आखिर यह रोग आया क्यों है? इस रोग को थोड़े धक्का देकर भी विदा कर देंगे तो इससे अधिक रोग आने की सम्भावना क्यों है? एक उदाहरण देकर मैं वक्तव्य को विराम देता हूँ - मच्छर मारने के लिए जो भी दवाएँ ढूंढी गईं, उससे क्या हुआ- उस समय के मच्छर तो मर गए,

आगे जो मच्छर की प्रजाति उत्पन्न हुई वह इतनी बलवान कि उस दवा का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। फिर अभी जो इस समय जो मच्छर हैं, इतने बलवान हैं, उन को मारने के लिए आप प्रक्रिया अपनाएँगे तो अग्रिम पीढ़ी के, अगली प्रजाति के जो मच्छर होंगे उन पर आजकल की दवा नहीं काम करेगी। कोरोना को मान लो हटा दो भगा दो लेकिन आगे जो नई विभीषिका चलेगी उसपर फिर दो वर्ष लग जाएंगे अनुसंधान करने में। इस प्रकार की विभीषिका आवे ही नहीं **"सर्वे संतु निरामयाः"** इसका प्रकल्प कहाँ है? किसी राजनीतिक खेमे में नहीं है क्योंकि राजनीति का अर्थ हो गया उन्माद। गिने-चुने व्यक्ति ऐसे हैं जो राजनीति के स्वरूप को समझते है। दंदफंद से चुनाव लड़ना...जीत जाना... यह राजनीति का स्वरूप नहीं है। MLA / MP बनने के लिए 10 लाख, 20 लाख रुपये देने पड़ेंगे टिकट लेनेके लिए, फिर प्रचार में भी 50 हज़ार या 50 लाख खर्च करेंगे तो व्यक्ति गद्दी पर जाकर राजनीति के नाम पर शोषक बनेगा या पोषक बनेगा? राष्ट्र की संरचना, राजनीति की उद्भावना ही लोकतंत्र के नाम पर इस ढंग से की गई है कि व्यक्ति शोषक बने बिना नहीं रहता। फिर मैंने संकेत किया कि शिक्षा पद्धति इस ढंग से बनाई गई है जो नीति और अध्यात्म विहीन है कि व्यक्ति तो बाजार का सौदा बनने के लिए....... "राज्यम् पण्यं न कारयेत्" ... **बाजार का सौदा बनने के लिए व्यक्ति जब शिक्षित होता है, तो समाज का शोषक होगा ही।** इच्छा न होने पर भी हर व्यक्ति जब

समाज का शोषक ही है तो राजनीति भी आज स्वस्थ रूप से परिलक्षित नहीं है, अर्थनीति भी स्वस्थ रूप से परिलक्षित नहीं है। इसलिए अब आवश्यकता है कि इस रॉकेट, कंप्यूटर, एटम और मोबाइल का युग में वैदिक महर्षियों के द्वारा चिर परीक्षित और प्रयुक्त जो सिद्धान्त हैं उनके आधार पर राजनीति को परिभाषित करें और क्रियान्वित करने का प्रकल्प चलावें।

हर हर महादेव

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

राजधर्म सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(दिवस २)

मान्य महानुभावों ने बहुत ही सुव्यवस्थित, परिमार्जित, सर्वहितप्रद भावों को अभिव्यक्त किया। मुझे प्रसन्नता है इस बात को लेकर कि वेदादि शास्त्र सम्मत विधा से राजनीति को परिभाषित और क्रियान्वित करने पर सबके हित का मार्ग प्रशस्त हो ही सकता है जैसा कि पूर्व में हुआ। इस तथ्य को वक्ताओं ने बहुत ही ओजस्वितापूर्वक, आस्थापूर्वक अभिव्यक्त किया है। जैसा कि प्रथम सत्र में मैंने कहा था, **मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रंथों का अनुशीलन करें तो राजनीति के लिए अन्य शब्दों का भी प्रयोग प्राप्त होता है। राजधर्म / दण्ड नीति / अर्थनीति / क्षात्र धर्म ये राजनीति के पर्याय हैं।** अगर हम राजविद्या, राजगुह्यं इन शब्दों का प्रयोग श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस अभिप्राय से किया है उस दृष्टि से विचार करें तो उत्कृष्ट नीति का नाम राजनीति है। नीति और धर्म तो पर्यायवाचक हैं ही। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - **क्षत्रिय शब्द का अर्थ क्या होता है? व्यक्ति को, समाज को, संस्कृति को क्षतिग्रस्त होने से जो बचावे।** राजा शब्द का प्रयोग क्षत्रिय के अर्थ में शास्त्रों में हुआ है। क्षात्रधर्म का नाम भी राजधर्म होता है।

मैंने एक संकेत किया था, वह बहुत महत्वपूर्ण है, जो देहात्मवादी होते हैं, चेतनाविशिष्ट शरीर को ही आत्मा मानते हैं, विषयलम्पट होते हैं उनके जीवन में इन्द्रियतादात्म्यापत्ति स्वभावसिद्ध होती है। उनकी दृष्टि इन्द्रियों के अनुरूप ही बनती है और इन्द्रियों की गति अनुभव के बल पर यह तथ्य सिद्ध है कि वर्तमान तक होती है। आज जो पूरे विश्व में विसंगति है उसका कारण देहात्मवाद है। देहात्मवाद से भावित जो व्यक्ति होता है, उसकी दृष्टि इन्द्रिय-तादात्म्यापत्ति-सम्पन्न होने के कारण केवल वर्तमान तक सीमित रहती है। अतिन्द्रिय वस्तुओं तक उसकी दृष्टि की पहुँच नहीं होती और उसके द्वारा जब विकास को परिभाषित और क्रियान्वित करने का प्रकल्प चलता है तो विस्फोट अवश्य होता है। मैं समय की सीमा में एक संकेत करना चाहता हूँ - मनु जी ने कहा "भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति" कालगर्भित ही नहीं अपितु कालातीत जो तत्व या पदार्थ हैं उनका अधिगम भी वेदों के द्वारा होता है। तैत्तिरीय उपनिषद् का अध्ययन करें तो एक विचित्र तथ्य है - हमारे जीवन में वेद की प्रतिष्ठा कहाँ है ? आखिर वेद को कहीं ना कहीं तो जीवन में प्रतिष्ठित करेंगे। तो तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार मनोमय कोष में अर्थात् मन में वेद की प्रतिष्ठा है। अभिव्यंग-अभिव्यञ्जक भाव सजातीय में होता है विजातीय में नहीं होता। मन में ऐसी क्या चमत्कृति है कि वेद मन में सन्निहित होते

हैं, प्रतिष्ठित होते हैं। वेदादि शास्त्रों का ज्ञान तो अंतःकरण में ही सन्निहित होता है न। तो बहुत अच्छी बात है छान्दोग्य श्रुति के आठवें अध्याय में इस तथ्य को उद्भासित किया गया कि जीवात्मा का दिव्य चक्षु मन है। हमको-आपको दिव्यचक्षु स्वभाव से प्राप्त है, केवल मन को परिष्कृत करने की आवश्यकता है। मन की क्या विशेषता है? **मन की गति भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में है और वेद की गति भी भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में है। इतना ही नहीं जो कालातीत परमात्मतत्व है, भगवतत्त्व है, जो कभी काल से कवलित नहीं होता, जिसकी विद्यमानता से ही काल की सिद्धि होती है उसमें भी मन की गति है।** जैसे कि विदुषी मातृशक्ति के मुख से निकला **अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि** आदि। तो ब्रह्मात्मतत्व तक भी हमारे आपके परिष्कृत मन की गति हो सकती है। गीता के 5वें अध्याय का अनुशीलन कीजिये तो **इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।।**

सदोष और विषम अनात्म प्रपञ्च से जिन्होंने अपने मन को कर्षित करके निर्दोष और सम ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर दिया, पुनर्भव पर उन्होंने जीवन काल में ही विजयश्री प्राप्त कर ली।

जो कुछ कालातीत पदार्थ है, भगवतत्त्व और कालगर्भित तत्व हैं सब में मन की अबाध गति हो सकती है। वेदों की भी यही योग्यता है जैसे वटवृक्ष वट बीज में सन्निहित होता है, वैसे ही सम्पूर्ण वेद ओंकार एकाक्षर ब्रह्म में सन्निहित है। केवल ॐ को लेकर ऐसी

मीमांसा की जाती है कि विश्व का कोई भी पदार्थ उसकी सीमा के बाहर न हो। सबका विज्ञान केवल ॐ के माध्यम से हो सकता है। तो हमने एक संकेत किया कि कालातीत तत्व का अधिगम भी वेदों के द्वारा ही होता है। तो मन जो है हमारे-आपके पास, दिव्यचक्षु के रूप में प्राप्त है। मन में ही वेदों की प्रतिष्ठा हो सकती है। हमने एक वाक्य कहा था - 'अदूरदर्शिता और सत्तालोलुपता वर्तमान में राजनीति का पर्याय है।' ऐसा कोई राजनीतिक दल परिलक्षित नहीं होता जिसमें अदूरदर्शिता न हो और सत्ता लोलुपता न हो। बीज का विलोप नहीं होता। गिने-चुने राजनेता ऐसे हो सकते हैं जिनमें सत्ता लोलुपता न हो, अदूरदर्शिता न हो लेकिन वे भी उपेक्षित हैं। एक संकेत और करना चाहता हूँ - लोगों को बहुत भ्रम होता है कि जब राजतंत्र था तो लोकसम्मत प्रतिनिधी का समादर नहीं था। ये एक भ्रम है। महाभारत के शांतिपर्व का अध्ययन कीजिए, आँखें खुल जाएँगी, ध्यानपूर्वक विश्वस्तर के महानुभाव सुनते होंगे, यह सन्देश लगभग 100 देशों में पहुँच रहा है। महाभारत के शांतिपर्व में क्या बताया गया - **राजा के मंत्रिमंडल में 4 ब्राह्मण हों शिक्षाविद, न्यायविद स्वार्थ से विहीन, सवहित के ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न, सबके हितैषी, हित करने में तत्पर और समर्थ चार ब्राह्मण हों। 8 क्षत्रिय हों ताकि रक्षा व्यवस्था सन्तुलित रहे चरमराये नहीं। 21 वैश्य हों ताकि कृषि, गौरक्ष, वाणिज्य, अर्थप्रकल्प सन्तुलित रहें, कभी भी विसंगति प्राप्त न हो। आर्थिक दृष्टि से विपन्नता प्राप्त न हो। 3**

शूद्र हों ताकि कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, सेवा के प्रकल्प में कहीं शिथिलता न आये। और एक सांस्कृतिक मंत्री सूत हों। तो अनुपात देखिए। जनता के सुयोग्य प्रतिनिधियों का सम्मान और सन्निवेश राजनीति में सिद्ध होता है या नहीं? फिर से सुनिए, आज श्री लाडले प्यारे स्नेहास्पद प्रधानमंत्री जी अर्थ की दृष्टि से भारत को सम्पन्न बनाने में लगे हैं और भी बहुत से महत्वपूर्ण कदम को उठाया है लेकिन यहाँ चार ब्राह्मण, आठ क्षत्रिय, इक्कीस वैश्य, तीन शूद्र और एक सूत (सांस्कृतिक मंत्री) और कैबिनेट में कुल 7 मंत्री हों, उनकी योग्यता कैसी होनी चाहिए इन सबका वर्णन महाभारत के शांति पर्व में है। और एक मैं संकेत करता हूँ, पहले भी मैंने कहा था, **राजा का अर्थ क्या है? छल बल डंके की चोट से अगर कोई राजगद्दी पर कब्ज़ा करता है तो उसको राजा हम नहीं कह सकते। छल बल डंके की चोट से, दाँव-पेंच से अगर कोई राजगद्दी पर कब्ज़ा कर लेता है तो उसको हम राजा कह ही नहीं सकते हैं क्योंकि लोकरंजन की भावना जिसमें नहीं है, साथ ही साथ जो सच्चरित्र सम्पन्न नहीं है, संयमी नहीं है, वो राजगद्दी पर बैठने योग्य नहीं है।**

एक और संकेत करना इस संदर्भ में मैं उचित समझता हूँ कि राजनीति में राजतंत्र में जब जब दिशाहीनता हुई है तब-तब शोधन का कार्य किसने किया है, किन्होंने किया है इस पर ध्यान देने की

आवश्यकता है। व्यासगद्दी की उपयोगिता क्या है इसको समझने के लिए मैं चारों युगों का उदाहरण दे रहा हूँ, सावधान! -

1. हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष के शासनतंत्र में दिशाहीनता आयी, आप सब जानते हैं श्रीमद्भागवत आदि के माध्यम से। लेकिन कोई उस समय ऐसा सूझबूझ सम्पन्न पराक्रमी शासक नहीं था जो हिरण्यकशिपु को चुनौती दे सके, उसके शासनतंत्र का शोधन कर सके। कौन निकले? देवर्षि नारद। स्वस्थ क्रान्ति के उद्भासक के रूप में देवर्षि नारद अभिव्यक्त हुए। जिनके प्रति गुप्त और सुप्त आस्था
2. हिरण्यकशिपु की भी थी। लेकिन विचित्र बात ये है कि उन्होंने उस दिशाहीन शासनतंत्र के उच्छेद का मार्ग तो प्रशस्त कर ही दिया, भगवान् नृसिंह के द्वारा उसका उद्धार तो करवा ही दिया परन्तु स्वयं शासनतंत्र नहीं संभाला। हिरण्यकशिपु के ही पुत्र भक्तप्रवर प्रह्लाद को राजगद्दी दे दी। यह हमारे यहाँ शासनतंत्र के शोधन की विधा है। देवर्षि नारद स्वस्थ क्रान्ति के उद्भासक सिद्ध हुए हैं लेकिन उन्होंने शासन नहीं संभाला, उन्होंने हिरण्यकशिपु के ही सुपुत्र भगवद्भक्त
2. प्रह्लाद को गद्दी दे दी। एक संकेत करना मैं चाहता हूँ - लाखों वर्षों में कोई एक अराजक शासक प्राप्त होता था जब राजतंत्र की व्यवस्था थी। राज माने श्रेष्ठ, तंत्र माने सिद्धांत। तंत्र शब्द का अर्थ दो होता है, जैसे कोई विद्वान हो तो क्या कहते सर्वतंत्र स्वतंत्र। तंत्र माने सिद्धांत शास्त्र और तंत्र माने अधीन, स्वाधीन, पराधीन। पराधीन जब कहते हैं तब क्या होता है? तब तंत्र का अर्थ

होता है अधीन। और जब कहते हैं सर्वतंत्र स्वतंत्र तब तंत्र का अर्थ होता है सिद्धांत। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि भक्तप्रवर प्रह्लाद को शासन दिया।

लाखों वर्षों में कोई-कोई उपद्रवी शासक हो जाता था किसी कारण से, उसको नियंत्रित करने की क्षमता व्यासपीठ के मनीषियों में होती थी तत्वदर्शियों में होती थी, वेदादि शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों में होती थी।

2. अब आगे लीजिए - वेन के शासनकाल में दिशाहीनता हुई तो उस दिशाहीनता का मार्जन किसने किया? उस समय कोई ऐसा शासक नहीं था जो वेन के शासन को चुनौती दे और वेन के हाथ से, चंगुल से राष्ट्र को, विश्व को बचा सके। उस समय का भारत कोई आज का भारत नहीं था। हिरण्यकशिपु के शासनकाल में सप्तद्वीपा मेदिनी..... वेन के शासनकाल में भारत का इतना सीमित क्षेत्र नहीं था। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ। लेकिन वेन को समझाने बुझाने का प्रयास किया भृगु महर्षि ने, जब नहीं समझा तब क्या किया? निग्रह और अनुग्रह। शाप देकर हुंकार मात्र से पुर्यष्टकसहित जीवकला को उसके शरीर से निकाल दिया। वेन को शव बना दिया। क्योंकि पुत्रेष्टि याग के प्रभाव से, प्रतिबंध युक्त पुत्रेष्टि याग के प्रभाव से वेन की उत्पत्ति हुई थी तो उसके शरीर में वैष्णव तेज की अभिव्यक्ति थी, तो शरीर का मंथन, आजकल तो इस प्रकार शल्य चिकित्सा उपस्थित नहीं है, विद्यमान नहीं है।

उसके शरीर का मंथन करके जैसा शासक चाहिए था वैसा प्रकट कर दिया। व्यासपीठ की यह महिमा है कि शव के माध्यम से भी हम शासक प्रकट कर सकते हैं। ध्यान गया? वेन के शव में भी दिव्यता का संचार इसलिए था कि उसकी उत्पत्ति जो हुई थी प्रमाद गर्भित पुत्रेष्टि याग से, वैष्णव याग से, विष्णु का तेज उसके शरीर में प्रतिष्ठित होने के कारण उस तेज का दिव्य दृष्टि से दर्शन करके और जैसा राजा चाहिए था, जैसी रानी चाहिए थी भुजदण्डों के मंथन से प्रकट कर दिया और अधोभाग के मंथन से उसके पापांश को वन की ओर भेज दिया, यह क्षमता महर्षियों में थी। लेकिन भृगु जी ने स्वयं शासन नहीं सम्भाला, भगवान के अंशावतार पृथु जी को ही शासन दिया। शासनतंत्र के शोधन का दायित्व ऋषियों पर जाता है, व्यास गद्दी से सम्बद्ध मनीषियों पर जाता है। और इस दायित्व को हम जानते हैं और समय आने पर उसका निर्वाह करने के लिए भी भगवत्कृपा से दक्षता प्रकट कर सकते हैं, यह मैंने संकेत किया, कान खोलकर पूरे विश्व के जो राजनेता माने जाते हैं, भाग्यविधाता माने जाते हैं वो सुन लें।

आगे, रावण का शासन तंत्र आया। अब ज़रा काल की दृष्टि से विचार कीजिए ... हिरण्यकशिपु और वेन के शासनकाल में कितने वर्षों का अंतराल रहा होगा? दो-चार वर्ष, दस-बीस वर्ष का तो नहीं रहा होगा। और वेन के शासनकाल में और रावण के शासनकाल में कितने वर्षों का अंतराल रहा होगा। मैंने बहुत सोच

समझकर इतिहास का अनुशीलन करके कहा है कि लाखों हजारों वर्षों के बाद कोई-कोई उपद्रवी शोषक अराजक शासक हमको प्राप्त होता था। लेकिन उसके शोधन की क्षमता व्यासपीठ के मनीषियों में थी।

३. **रावण को चुनौती देने वाला कोई विश्व में क्या, त्रिभुवन में शासक कोई उस समय नहीं था। उस समय किसके हृदय में वेदना उत्पन्न हुई? वशिष्ठ जी के हृदय में, विश्वामित्र जीके हृदय में।** इन मनीषियों ने क्या किया? रावण के शासन को उच्छिन्न करने का प्रयास किया और उसमें वो सफल हुए, फिर शासन किसको दिया? यहाँ भी संकेत करता हूँ - हिरण्यकशिपु से ही सम्बद्ध प्रह्लाद थे और वेन से ही सम्बद्ध कौन थे? पृथु जी थे। और रावण से ही सम्बद्ध अनुज के रूप में विभीषण थे। विभीषण को राजगद्दी दी स्वयं वशिष्ठ जी ने राजगद्दी नहीं ली। और **भगवान् श्री रामभद्र को सार्वभौम सम्राट के रूप में ख्यापित करने का श्रेय भी विश्वामित्र जी को है, वशिष्ठ जी को है। इसका मतलब शासनतंत्र में विकृति आती है तो शोधन का प्रकल्प, यह जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ व्यासपीठ के मनीषी होते हैं उन्हीं के हाथ में होता है। वो उसमें पूरे समर्थ भी होते हैं, असमर्थ नहीं होते हैं।** और मैं एक संकेत करना चाहता हूँ आगे बढ़िये- वशिष्ठ जी ने जब रावण के शासन का उच्छेद किया। उससे लेकर व्यास जी के समय तक कितना समय रहा होगा? युग की दृष्टि से लाखों वर्ष का समय हुआ होगा। इसलिए राजतंत्र की जब प्रणाली थी तो

लाखों वर्षों में कोई आतंकवादी, अराजक तत्व, वो भी पूर्व तप के प्रभाव से, योगभ्रष्टता के प्रभाव से, भोगभ्रष्टता के प्रभाव से कुशासक होता था। (20 : 00)

एक मैं और संकेत करना चाहता हूँ - आजकल ये जितने अराजक तत्व हैं, गद्दी पर बैठे हुए देश-विदेश में, वे बहुत दुर्बल हैं, दयनीय उनकी स्थिति है, मैं जानबूझकर कह रहा हूँ वे बहुत दुर्बल हैं। हमारे पूर्वजों ने, हमने व्यास गद्दी से जिनको नकेल डाला, जिनको नियंत्रित किया, वो आजकल, उनके सामने तो कोई भी टिक नहीं सकता अराजक तत्व। वो परलोकवादी थे। हिरण्यकशिपु परलोकवादी था या नहीं? उसकी अभिव्यक्ति को देख लीजिए। वेन देहात्मवादी होने पर भी परलोकवादी वस्तुतः था। परलोकवादी का मतलब बहुत उच्चकोटि का होता है। वेन भी देह के नाश से जीव का नाश नहीं मानता था। और आगे देखिए, विचार कीजिये...रावण भी परलोकवादी था, तभी तो इन्द्र आदि से भिड़ जाता था। इन्द्र आदि से भिड़ने वाला व्यक्ति, आज तो मंगल ग्रह पर पहुँचने की केवल चर्चा हो रही है, इन्द्रलोक तक जिसकी गति नहीं रही होगी वो इन्द्र से भिड़ता कैसे था ? मेघनाद भिड़ता कैसे था? इसका मतलब उस समय जो अराजकता तत्व राजा होते थे वो भी किसी प्रतिबंध के कारण, शाप के कारण अराजकता की धारा में बहते थे लेकिन वो इतने बलवान होते थे कि उस स्वर्ग इत्यादि के

अस्तित्व को मानते थे। **भगवान् विष्णु को चुनौती देने वाला हिरण्यकशिपु आदि सामान्य शासक रहा होगा क्या? आज क्या भगवान् विष्णु का दर्शन होता है इन सब अराजक तत्वों को? भगवान् विष्णु से भी भिड़ जाने की क्षमता रखने वाला या उनको भी चुनौती देने वाला, सामान्य वो आतंकवादी तो नहीं रहा होगा।** इसके बाद देख लीजिए....व्यास जी के समय में, मैत्रेय जी के समय में क्या हुआ? कंस और दुर्योधन। कंस और दुर्योधन ये सब कैसे थे जी? देवता मिथ्याभाषी नहीं होते। इस सिद्धांत में कंस की आस्था थी या नहीं? परलोकवादी था या नहीं? केवल देहात्मवादी तो नहीं था। और दुर्योधन ने तो ताल ठोकते हुए देह त्याग के पहले कहा - जीवनकाल में हम ने पाण्डवों को नकेल डाला, वे अपने सगे सम्बन्धियों को मरवा कर रोते हुए शासन करेंगे, उनके पहले मैं इस शरीर को छोड़कर के स्वर्ग में जा रहा हूँ। इसका मतलब वह भी परलोकवादी था, देहात्मवादी नहीं था। मैंने संकेत किया कि अराजक तत्वों के दो प्रभेद होते हैं - एक केवल देहात्मवादी होता है अराजक तत्व, एक होता है कि देह के नाश से जीवात्मा का नाश नहीं होता ऐसा, ऐसा जो अराजक तत्व होता है वो इतना बलवान होता है कि बिना भगवान् के तो उसका उद्धार हो ही नहीं सकता है। अपने उद्धार का बानक बनाने के लिए दुष्टता का उपयोग करता है।

एक मनोविज्ञान भी समय की सीमा में कह दूँ - जितने आतंकवादी होते हैं, अराजक तत्व होते हैं उन सब की एक निश्चित स्थिति होती है, मनोवृत्ति होती है। वो उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं कोई ऐसा माई का लाल जो मुझे मार सके, मेरी दुर्गति से मुझे त्राण दे सके। मैं एक उदाहरण देता हूं - अग्नि का स्वभाव क्या है? आग जो है अपने अभिव्यञ्जक संस्थान को दग्ध करती हुई प्रकट होती है। विषय पर कारगर हो या ना हो, किसी का वस्त्र जलाना चाहें, या तीली घिसकर आग प्रकट करके जल में डाल दें। विषय पर आग कारगर हो या ना हो, आश्रय को दग्ध किए बिना उसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार जो व्यक्ति क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि को पालता है उसको जब कोई दण्ड देगा तब देगा, उसके हृदय में जो क्रोधाग्नि, द्वेषाग्नि, ईर्ष्या की आग होती है, उसका हृदय जलता रहता है। इसलिए जितने आतंकवादी होते हैं, वो प्रतीक्षा करते हैं इस यातना से मुक्त करने वाला कोई माई का लाल प्रकट हो लेकिन उनका स्वभाव होता है, वे पराक्रम दिखाए बिना नहीं रहते। लिहाज़ नहीं करते युद्ध में, अंतिम क्षण तक पराक्रम दिखाना और मन में यह भाव संजो कर रखना कि कोई माई का लाल हमें इस तामस शरीर से मुक्त करके सद्गति प्रदान कर सके। औरों की बात छोड़ दें, असुर नहीं अष्ट वसुओं में एक वसु के अवतार भीष्म पितामह, मुझे संक्षेप में बहुत कुछ कहना है मैं संकेत करता हूं, युद्ध के प्रसंग में धर्मराज युद्धिष्ठिर भीष्म जी के रथ के पास पहुँच गए। भीष्म जी ने थोड़ा

संकेत किया - मेरे पास आ जाओ। दर्शक लोग देखते रहे क्या बात है? कान मुँह के पास ले गए, भीष्म जी ने क्या कहा मालूम है महाभारत में? "मैंने प्रतिज्ञा की है पाण्डवों के पक्ष के इतने योद्धाओं को रोज मारने की, जब तक मैं जीवित रहूँगा, युद्ध करने के उपयुक्त मेरा शरीर रहेगा, देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण की स्थिति युद्ध करने के अनुकूल रहेगी, तबतक मैं अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ नहीं सकता। मैं तो भूभार हरण के लिए किसी और के द्वारा नियुक्त हूँ लेकिन मुझे अपने इस आक्रामक स्वभाव से ही वैराग्य हो गया है। मुझ पर तेरी बहुत कृपा होगी युद्धिष्ठिर कोई ऐसा बानक बना, यद्यपि इच्छा मृत्यु हूँ, जब चाहूँगा पिता जी का वरदान प्राप्त है तभी शरीर छोडूंगा। इस समय दक्षिणायन है, उत्तम मुहूर्त में ही शरीर छोडूंगा। लेकिन मुझे युद्ध करने योग्य मत रहने दो। किसी ऐसे व्यक्ति को युद्ध में मेरे सामने कर दो जो मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी उसके शरीर पर वार ना कर सकूं, उसकी ओट में अर्जुन जब मुझे तीखे बाणों से बिद्ध कर देंगे तब मैं धराशाई हो जाऊंगा। इसका मतलब सामान्य व्यक्ति की बात छोड़ दीजिए, लीला पूर्वक और अराजक तत्वों के दमन की भावना से असुर पक्ष का नेतृत्व करने वाले जो भीष्म जी थे उनके हृदय की भावना भी थी। ये जो मन में द्वेष है, सज्जनों को मिटा देने की, योद्धाओं को मार देने की भावना है इससे मुक्त होने के लिए कोई माई का लाल मुझे धराशाई कर दे। आतंकवादियों का स्वभाव होता है अंतिम क्षण तक वो लिहाज़ नहीं करते, बिल्कुल सारी शक्ति

लगाकर आक्रमण करते हैं लेकिन उनकी प्रतीक्षा होती है कोई माई का लाल उन्हें धराशाई करने वाला हो तो कंस और दुर्योधन के मान के दमन के लिए युद्धिष्ठिर आदि की अभिव्यक्ति हुई। भगवान् श्रीकृष्णजी की नीति थी। मैंने संकेत किया, क्या संकेत किया? उस समय व्यूह रचना किसने की? भगवान् वेदव्यास जी ने, मैत्रेय जी ने, तो व्यासपीठ से सम्बद्ध जो मनीषी होते हैं वे ही वस्तुतः स्वस्थ क्रान्ति को उद्भासित करते हैं और शासनतंत्र के शोधन की क्षमता भी उन्हीं में होती है। कृतयुग का इतिहास मैंने लिया, कहाँ से? हिरण्यकशिपु, वेन से; त्रेता का इतिहास लिया रावण से, द्वापर का इतिहास लिया कंस, दुर्योधन से, अब कलियुग का इतिहास सुन लीजिए - भगवान श्रीशङ्कराचार्य महाभाग, यहाँ एक कुछ विलक्षणता है। वहाँ तो अराजक तत्वों को धराशाई कर दिया गया लेकिन यहाँ लोकानुवर्तन के अनुसार **भगवत्पाद शङ्कराचार्य महाभाग ने सुधन्वा के हृदय का शोधन किया। न मारा न मरवाया। इतनी विलक्षणता है।** और उस समय बौद्धों का यशोगान करने वाले महानुभाव थोड़ा सुन लें, बौद्धिज़्म का पर्यवसान कम्युनिज्म में होता ही है। चीन सावधान! बौद्धिज़्म का पर्यवसान कम्युनिज्म में होता ही है। उत्तरप्रदेश के राहुल सांकृत्यायन ३२ भाषा के विद्वान थे, सनातन मार्ग को छोड़कर बौद्ध हुए, अंत में कम्युनिस्ट हो गए। हमारे एक सगे संबंधी, नवीन दृष्टि से नागार्जुन .... यात्री जी, जब मैं ५ साल का था वह गाँव में आए थे, हमारे पड़ोसी क्या उनके ससुराल, उन्होंने मेरे सर पर हाथ

रखा था बड़े लाड प्यार से यात्री जी और सनातनी से लुढ़कते लुढ़कते हो गए बौद्ध और बौद्ध से हो गए कम्युनिस्ट। नेपाल भी सावधान! मैं एक संकेत करना चाहता हूं - क्रिश्चियनों के चपेट में आकर जो अपना धर्म परिवर्तन कर लेते हैं रुपये के लोभ में, उनकी बात छोड़ दीजिए, आगे दूसरे प्रकार के व्यक्ति हैं जो सीधे कम्युनिज्म की धारा में बह जाते हैं। तीसरे प्रकार के वो व्यक्ति हैं जो निर्धन होने पर भी, आर्थिक दृष्टि से विपन्न होने पर भी न क्रिश्चियन बनते और न कम्युनिस्ट बनते उनको बौद्ध बना दिया जाता है। और बौद्ध बनाने के बाद उनको कम्युनिस्ट बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया जाता है, यह भी एक गुप्त नीति है। मैं इतिहास को उद्धृत करता हूँ - तिब्बत का नाम सुना होगा। तिब्बत में जब क्षात्र धर्म का अनुपालन होता था तो तिब्बतियों के आगे चीन नतमस्तक रहता था। चीन शब्द संस्कृत का है, अर्वाचीन समीचीन की बात तो छोड़ ही दीजिए। केवल चीन शब्द संकर जाति विशेष के लिए शास्त्रों में प्रयुक्त हुआ है। आज चीन जो कम्युनिज्म की धारा में बह रहा है, क्यों बह रहा है? (बौद्धिज़्म का पर्यवसान कम्युनिज्म में हुए बिना नहीं रहेगा क्योंकि बौद्धिज़्म को धरातल प्राप्त नहीं है। और जिस सिद्धांत को धरातल प्राप्त नहीं है उसका पर्यवसान दिशाहीनता में हो, स्वाभाविक है।) भगवान् शङ्कराचार्य महाभाग ने क्या किया? व्यासपीठ की महिमा भी सुन लीजिए। (उस समय शासनतंत्र भी बौद्धों के पास चला गया था, व्यासपीठ भी सनातनियों के पास नहीं

बौद्धों के पास। बौद्ध भिक्षुकों ने किसके माध्यम से? विहार। एक भारत में बिहार प्रांत है। बिहार के व्यक्ति, बंगाल के व्यक्ति, उड़ीसा के व्यक्ति, व और ब के उच्चारण में प्रायः भूल कर ही जाते हैं। छत्तीसगढ़ के व्यक्ति भी प्रायः विलासपुर को लिखते हैं बिलासपुर। यहाँ आदित्यवाहिनी को लिखते हैं आदित्यबाहिनी। विहार है। बौद्ध विहार के कारण उसका नाम बिहार दिया गया। इसका मतलब बौद्धों मठ भी बना लिया था। मठ और मंदिरों पर बौद्धों का अधिकार था, व्यास गद्दी पर अधिकार था। बौद्ध भिक्षुक घूम रहे थे। और क्या था? संघ बल भी उनके पास था। शासनतंत्र भी उनके पास था। **भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य जी महाभाग ने क्या किया? शासनतंत्र का भी शोधन कर दिया, बौद्ध सम्राट् को सनातन सम्राट् के रूप में उद्भासित किया। और दशनामी सन्यासियों को उद्भासित करके उन्होंने क्या किया - बौद्ध भिक्षुकों की उपयोगिता को भी निरस्त कर दिया। और चार आम्नाय पीठों की स्थापना करके उद्भावना करके ऋक्, यजु, साम, अथर्व से सम्बद्ध जितने भी हमारे आम्नाय थे, सबकी रक्षा का मार्ग प्रशस्त कर दिया।**

एक संकेत और करना चाहता हूँ - ये जो हम लोग हैं, हमारा दायित्व क्या है? भगवान् शङ्कराचार्य महाराज ने क्या किया? ध्यान देकर सुनिए। शङ्कराचार्यजी का पूरा जीवन चरित्र अगर पाँच-सात वाक्यों में गुम्फित करना हो तो आजकल बहुत उपयोगिता उसकी

होगी। कालक्रम से विलुप्त ज्ञान विज्ञान को क्या किया? **प्रकट किया** तपोबल से। ये व्यास गद्दी का दायित्व है। हलवा, पूरी, रबड़ी, कचौरी खाने और ऐसे आशीर्वाद देकर केवल दीक्षा देने या चांदी-सोने के सिंहासन पर बैठ कर आराम करने के लिए ये व्यास गद्दी नहीं है। व्यास गद्दी का तात्पर्य क्या होता है? **कालक्रम से विकृत ज्ञान विज्ञान को विशुद्ध करना।** इतनी तपस्या की शक्ति चाहिए, **मेधा शक्ति चाहिए। कालक्रम से विलुप्त ज्ञान-विज्ञान को उद्भासित करना। कालक्रम से विकृत ज्ञान-विज्ञान को विशुद्ध करना। सूत्रात्मक ज्ञान-विज्ञान को विशद करना। और व्यासपीठ का शोधन करके शासनतंत्र का शोधन करके दोनों में सामञ्जस्य स्थापित करके धर्मराज्य-रामराज्य की प्रतिष्ठा का मार्ग प्रशस्त करना।** ये व्यासपीठ का सज्जनों दायित्व है। भगवान् शङ्कराचार्य के बाद हम कहाँ आ रहे हैं? भगवान् शङ्कराचार्यने शासन नहीं किया ना? सुधन्वा को सम्राट बनाया, सार्वभौम सम्राट। चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बनाया लेकिन शोधन कर दिया शासनतंत्र का। आगे समर्थ रामदास तक हम आ जाते हैं। उन्होंने शासनतंत्र को नहीं संभाला, शिवाजी को दिया। अब मैं एक विचित्र पहेली रखता हूँ, समाधान भी सांकेतिक दृष्टि से करना उचित समझता हूं.....इस समय लोकतंत्र है नाम मात्र के लिए, प्रजातंत्र है। ये जितनी स्वस्थ क्रान्तियाँ आईं संतो के द्वारा महापुरुषों के द्वारा ये सब राजतंत्र में आईं। इस समय कार्य करने की क्या विधा हो सकती है उस पर

बहुत गंभीर मंथन की आवश्यकता है। ये जो भारतवर्ष में तथाकथित लोकतंत्र या प्रजातंत्र है, १९४७ के बाद में तो २ साल लग गए संविधान बनने में। जैसा संविधान है विदुषी देवियों ने भी उसकी बहुत बढ़िया समीक्षा की। हमने संकेत किया, इस समय लोकतंत्र के नाम पर जो कुछ है प्रजातंत्र के नाम पर, इस समय स्वस्थ क्रांति का स्वरूप क्या हो सकता है, एक चिंतन का विषय है। कल्पना कीजिए हम चाहते हैं कि शासनतंत्र का उचित शोधन हो। तो हम तीन प्रकल्प पर विचार करेंगे। कोई राजनीतिक दल हमारी दृष्टि में ठीक-ठाक है मान लो जनसंघ ही, उसमें अगर हम सम्मिलित हो गए, एक प्रकल्प ये हो गया। दूसरा प्रकल्प क्या हुआ? किसी नये राजनीतिक दल की हमने प्रतिष्ठा कर दी। तीसरा प्रकल्प क्या हुआ? किसी राजनीतिक दल को पसंद नहीं किया, सबके समीक्षक आलोचक वन गये। तीनों में क्या लक्ष्य की सिद्धि होगी? इस पर विचार कीजिये। किसी राजनीतिक दल के साथ घुल मिल गये तो चुनाव जीतने की जो प्रक्रिया है... काजल की कोठरी में कैसा भी सयाना जाएगा तो काजल के चपेट में पड़ेगा ही। आजकल सत्ता प्राप्त करने के लिए जितने दांव-पेच हैं उसको बनाए बिना तो वह काग़ज़ का ही रहेगा नेता, व्यवहार में उतर नहीं सकता है। और उसका आदर्श भी क्या होगा? क्योंकि सेक्युलर शासनतंत्र है तो मुंह भी नहीं खोल सकता वह उचित ढंग से, चुनाव की पद्धति भी, उसको तो टिकट भी तभी मिलेगी जब वह घोषित कर दे कि मैं

सेक्युलर हूं। तो मैंने संकेत किया तीनों प्रकल्प आजकल निरस्त हैं। इसलिए चौथा प्रकल्प निकालने की आवश्यकता है कि इस समय शासनतंत्र के शोधन का स्वरूप क्या हो सकता है? पहली बात मैंने क्या कही कि जो भी पुराने दल हैं, किसी एक दल को चुन लीजिए। हमारे परम पूज्य श्री वामदेव जी महाराज ने इसी ढंग से भाजपा का समर्थन किया।भाजपा ने उनको निगल लिया, भाजपा का शोधन नहीं कर पाए। बहुत से महानुभावों ने शिवसेना का पक्ष लिया। शिवसेना ने उन को निगल लिया, ठाकरे जी के पुत्र को भी निकल लिया। मतलब राजनीतिक दल ही निगल जाते हैं, राजनीतिक दल के शोधन करने की बात ही दूर हो गई। यह प्रयोग भारत में असफल हो चुका है, कोई राजनीतिक दल है उसमें सम्मिलित कर हम उसका शोधन कर देंगे, उसी गर्त में जाकर हम समा जाएँगे।

अगर नई पार्टी की उद्भावना करते हैं तो उसको खड़ा करने में १५ साल आर्थिक विपन्नता आदि की दृष्टि से अराजक तत्वों का गठबंधन न करें, गलत ढंग से अर्थ न लें, १०-१५ साल पार्टी को खड़ा करने में लगेगा तब तक तो देश कहाँ चला जाएगा कह नहीं सकते। तीसरा प्रकल्प ये है जो लोग मेरे बारे में सोचते होंगे, कोई भी राजनीतिक दल पसंद नहीं है तो सत्ता, लोलुपता अदूरदर्शिता के चपेट से कोई राजनीतिक दल मुक्त ही नहीं है, तो क्या सब राजनीतिक दल को नकेल डालेंगे? इनका सिद्धांत तो अच्छा हो सकता है, व्यवहार में कभी सफल नहीं हो सकते। तीनों से दूर

रहकर कौन सा प्रकल्प ऐसा करना चाहिए जिसके फलस्वरूप शासनतंत्र का शोधन हो, व्यासपीठ का शोधन हो। इस समय एक भयंकर शीत युद्ध है उधर आपका ध्यान जाता होगा या नहीं, शङ्कराचार्य के पास आकर के कोई मुख्यमंत्री हों, प्रधानमंत्री हों, हाथ जोड़ देंगे, इतना हो सकता है। लेकिन प्रयास यह रहेगा कि हमारे प्रचारक बन जाएँ। प्रयास ये रहेगा कि कहीं व्यासपीठ ऊपर न उठ जाए, ऐसा ना हो कि व्यासपीठ के अधीन हमको शासन करना पड़े या मार्गदर्शन में शासन करना पड़े। यह व्यामोह, तथाकथित आस्तिक मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री जो हुए हैं या हैं, उनके हृदय में भी है। अगर कोई व्यासपीठ का माई का लाल ऐसा निकल आया जो व्यासपीठ का शोधन करके शासनतंत्र के शोधन की भी क्षमता रखता हो, तो हम लोगों की जो सेक्युलर विधा से शासन की प्रणाली है वह तो समाप्त हो ही जाएगी। इसलिए विचार करने की आवश्यकता है कि धार्मिक संस्थान जो दुर्ग हैं, मठ हैं, मंदिर हैं और जो कोई भी राजनीतिक दल से पृथक् कहे जाने वाले संस्थान के सदस्य हैं, उन सबको अपना प्रचारक बना लो, आर एस एस, विश्व हिंदू परिषद् को भी अपना प्रचारक बना लो। धीरे-धीरे उनको राजनीति में डाल दो। राजनेताओं के चंगुल से मुक्त किसी आध्यात्मिक मनीषि को, मठ-मंदिर को रहने दें यह कल्पना भी आज-कल के राजनेता नहीं करते। तो यहाँ तक हम आए, हमने

ये संकेत किया सज्जनों राजनीति की परिभाषा ही गलत है क्योंकि देहात्मभावभावित राजनीति की परिभाषा है।

और एक संकेत करना चाहते हैं, मैंने आरम्भ में ही कहा था कि समष्टि की अभिव्यक्ति व्यष्टि के रूप में है। कल सूक्ष्म रहस्य दिया था आज भी मैंने इसलिए कहा कि इस पर ध्यान गया हो या ना हो, हमारा आपका जो स्थूल शरीर है पाञ्चभौतिक है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु समष्टि हैं या नहीं? समष्टि का एक अंश ही हमको स्थूल शरीर के रूप में प्राप्त है। जैसे जल से बुदबुद निकल आवे, तरंग निकल आवे, फेन निकल आवे, या मिट्टी से घट बन जाये, या ताम्र से ताम्रपात्र की संरचना हो जाये, समष्टि से ही, पञ्चभूतों से ही हमारा स्थूल शरीर बना है। कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, अंतःकरण, प्राण, ये सब जो सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर के अंश हैं, ये सब भी समष्टि, पृथ्वी, तेज, अग्नि, वायु, आकाश के जो सूक्ष्म रूप हैं, उन्हीं के कार्य हैं। और माया का ही एक अंश अविद्या कारण शरीर है और स्वयं ब्रह्म का ही अंश सरीखा (औपाधिक रूप) जीव है। इसका मतलब समष्टि ही व्यष्टि के रूप में अभिव्यक्त है। और व्यष्टि की, व्यक्ति की सार्थकता तभी है जब वह समष्टि के हित में अपने जीवन का उपयोग और विनियोग करे। एक प्रथा ये है।

दूसरी प्रथा हम देखते हैं जैसा मैंने उदाहरण दिया कि एक-एक वृक्ष मिल करके वन बन जाते हैं। व्यष्टि समष्टि की उद्भावना में

हेतु है। एक-एक व्यक्ति मिलके समाज की, वर्ग की, तंत्र की रचना हो जाती है। ऐसा मानने पर व्यक्ति की प्रधानता अवश्य रहती है। व्यक्तियों के समूह को जब हम समाज मानेंगे, व्यष्टि के समूह को जब हम समष्टि मानेंगे, तो मुख्यता कहाँ पे बैठेगी? व्यष्टि पर, एक यूनिट पर, एक इकाई पर, एक घटक पर। इसलिये ये सनातन परम्परा नहीं है। समष्टि से व्यष्टि की अभिव्यक्ति हुई है, इस दृष्टि से जब हम विचार करेंगे, तो व्यष्टि का जीवन समष्टि के लिए ही समर्पित हो, सबके हित के लिए ही समर्पित हो, तब काम बनेगा।

तो हमने एक संकेत किया सज्जनों, राजनीति की जो स्वस्थ परिभाषा वेद आदि शास्त्रों के अनुसार है, वो क्या है? **सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, संपन्न, सेवा परायण, स्वस्थ और सर्वहितप्रद व्यक्ति और समाज की संरचना।** इसका अर्थ ये है कि सबके हित की भावना से अपने हित का मार्ग प्रशस्त करना। सबका हित होगा तो हमारा हित भी होगा। एक संकेत और कर देना चाहता हूं - हित तत्व एक होता है। हित पृथक् पृथक् नहीं होता। **"सर्वभूत हिते रताः"** अगर हमको हित का ज्ञान हो गया तो हम जो भी व्यवहार करेंगे उसका फल हमारा हित भी होगा, समाज का हित भी होगा, सबका हित होगा। और अंत में लौकिक उत्कर्ष, पारलौकिक उत्कर्ष, परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त हो, मृत्यु, अज्ञता, जड़ता और दुःख पर आत्यंतिक विजय का वेग और बल हमारे जीवन में प्राप्त हो।

मैं केवल दो तीन वाक्यों में धर्म को उद्भासित करना उचित समझता हूँ - पूरे उत्तर मीमांसा, पूर्व मीमांसा का अध्ययन करके जो मुझे सारांश मिला है, धर्म को लेकर तीन चार वाक्य में ही प्रकट करना उचित समझता हूँ। एक है सिद्ध कोटि का धर्म और एक है साध्य कोटि का धर्म। सिद्ध कोटि का धर्म मैं जिस तरह परिभाषित कर रहा हूँ गुरु, गोविंद और ग्रंथ की कृपा से, कोई भी नास्तिक से नास्तिक उसका खण्डन नहीं कर सकता। आज क्या है, वेदादि शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन न होने के कारण नास्तिकता बढ़ रही है। अगर वेदादि शास्त्र सम्मत सिद्धांत को ठीक से समझकर उद्भासित किया जाए, विश्व में कोई नास्तिक रह ही नहीं सकता है। मैं अभी धर्म को परिभाषित कर रहा हूँ, सिद्ध कोटि का धर्म कैसा है? विश्व का कोई वैज्ञानिक हो, भौतिकवादी हो, नास्तिक हो धर्म को स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता। उदाहरण देता हूँ - **"धारणात् धर्मः"** ... महाभारत कर्णपर्व, महाभारत शांतिपर्व, मत्स्यपुराण, अमरकोष, ये सिद्ध कोटि का धर्म है **"धारणात् धर्मः"**। पृथ्वी के कार्य का नाम होता है पार्थिव, पार्थिव प्रपञ्च को धारण करने वाली पृथ्वी है या नहीं? ये धर्म है। पृथ्वी धर्म है। कहाँ से बोल रहा हूं - कठोपनिषद् में आत्मा का नाम धर्म है। बौद्ध दर्शन में भी आत्मा का नाम धर्म है। आत्मा धर्म क्यों है जी? पार्थिव प्रपञ्च का उद्गम स्थान, उत्पत्ति, स्थिति, निलय स्थान, उद्भव स्थान कौन है

पृथ्वी है। पृथ्वी को धारण करने में समर्थ है सन्निकट निर्विशेष जल। जल धर्म है, जल को धारण करने में सन्निकट निर्विशेष तेज। क्योंकि तेज से ही जल की अभिव्यक्ति होती है। तेज से जल की उत्पत्ति होती है माने, जल का उदय स्थान, निलय स्थान, विलय स्थान तेज ही सिद्ध है। और ऐसे ही तेज का उदय स्थान, निलय स्थान, विलय स्थान वायु सिद्ध है। वायु का उदय स्थान, निलय स्थान, विलय स्थान आकाश सिद्ध है। आकाश धर्म है। आगे चलें तो आकाश का उद्भव स्थान, लय स्थान और स्थिति स्थान कौन है? अव्यक्त है / प्रकृति है, इसलिए अव्यक्त या प्रकृति क्या है? धर्म है। प्रकृति भगवान् की शक्ति है - **"ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः"** इसलिए प्रकृति का भी उदय स्थान, निलय स्थान, विलय स्थान भगवान् हैं। भगवान धर्म हो गए या नहीं? अब सिद्ध कोटि की दृष्टि से विचार करें तो धर्म की इस परिभाषा को कौन नकार देगा ? Matter is nothing but energy, energy is nothing but soul, soul is the super source of energy. इस सिद्धांत को कौन नकार देगा? ये सिद्ध कोटि का धर्म।

साध्य कोटि का धर्म- यज्ञ, दान, तप, व्रत जिससे जीवन में अद्भुत बल और वेग का संचार होता है। देह, इन्द्रिय, प्राण, अंतःकरण का शोधन होता है। जब तक मुट्ठी खोलेंगे नहीं तब तक यज्ञ और दान का सम्पादन नहीं हो सकता। जब तक सुख का त्याग

नहीं करेंगे तब तक क्या होगा जी? तब तक व्रत नहीं हो सकता, तप नहीं हो सकता। इसका मतलब क्या हुआ? त्याग का अद्भुत बल और वेग यज्ञ, दान, व्रत के बल पर होता है। यज्ञ और दान त्याग के बिना हो ही नहीं सकता है। व्रत जो है सुख का त्याग किए बिना हो ही नहीं सकता है। इसी प्रकार जो योग है, सर्वस्व त्याग किए बिना हो ही नहीं सकता है। और तप जो है, शरीर, इन्द्रिय आदि को कष्ट दिए बिना अर्थात शोधित किए बिना, शोधन का प्रकल्प चलाए बिना हो ही नहीं सकता है। अंत में जो वर्णाश्रम पर आक्षेप करते हैं, उसका समाधान भी दो-तीन वाक्यों में कर देता हूँ।धीरे से बोल रहा हूँ, मैं एक प्रश्न उठा रहा हूँ उसका उत्तर मैं स्वयं दूंगा - ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिए जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से अरक्षित है। भोग का त्याग किए बिना व्रत नहीं हो सकता। सुख का त्याग किए बिना तप नहीं हो सकता, मुट्ठी खोले बिना यज्ञ और दान का सम्पादन नहीं हो सकता। यज्ञ, दान, तप और व्रत जीवन में अद्भुत बल और वेग का सञ्चार करते हैं। योग का आलम्बन तब लेंगे जब हम समस्त अनात्मप्रपञ्च से ऊपर उठने का प्रयास करेंगे लेकिन मैं एक संकेत करता हूँ - ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिए, जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से अरक्षित हो, वहाँ आर्थिक विपन्नता और विषमता पले बिना रह ही नहीं सकती। **आजकल पूरे विश्व में आर्थिक विपन्नता है, विषमता है। अनावश्यक विषमता और आर्थिक विपन्नता का मूल क्या है? हर व्यक्ति की जीविका जन्म**

से अरक्षित। वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल क्या है? जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से सुरक्षित। आर्थिक दृष्टि से विचार कर लीजिए वर्णाश्रम पर। अच्छा ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिए जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से सुरक्षित है, आर्थिक विपन्नता नहीं हो सकती अनावश्यक विषमता नहीं हो सकती। इसलिए आर्थिक दृष्टि से भी वर्णाश्रम को मानना आवश्यक है। साथ-ही-साथ एक विचित्र बात है - शिक्षा, रक्षा, अर्थ, सेवा और स्वच्छता के प्रकल्प समाज को सदा सन्तुलित रूप में प्राप्त हों इसके लिए आपको वर्णाश्रम मानना ही पड़ेगा। इसका अर्थ ये होता है, कुछ भी प्रयास करें धज्जि उड़ाने का लेकिन जो महर्षियों ने मार्ग प्रशस्त किया उसको माने बिना लौकिक उत्कर्ष भी नहीं हो सकता, पारलौकिक उत्कर्ष भी नहीं हो सकता, जन्म और मृत्यु की अनादि अजस्र परम्परा का उच्छेद भी नहीं हो सकता। अतः है राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और यह कल्पना मत कीजिए कि सेक्युलर शासनतंत्र रहे और हम अपने अस्तित्व और आदर्श की रक्षा कर सकें। पहले सेक्युलर शब्द को धोखा देकर रखा गया था। पहले यही था, जीतने पंथ के व्यक्ति भारत में रहते हैं, उनके प्रति कोई क्रूरता का परिचय नहीं दिया जायेगा, सबके अविरुद्ध सिद्धांत का पालन किया जाएगा, इसका नाम सेक्युलर था। आजकल व्यवहार में सेक्युलर का अर्थ होता है - अन्य पंथ धर्म सापेक्ष, सनातन हिन्दू धर्म निरपेक्ष ही नहीं विरोधी शासनतंत्र। इसलिए नास्तिकता की

पराकाष्ठा है। अरे विभाजन के बाद भारत को सेक्युलर शासनतंत्र देने की आवश्यकता ही क्या है? विभाजन की आधारशिला ही गलत। विभाजित भारत में भी हम अपने अस्तित्व और आदर्श को विलुप्त कर देंगे तो हमारी स्वतंत्रता का अभिप्राय क्या है? और मुस्लिम तंत्र, क्रिश्चियन तंत्र, कम्युनिस्ट तंत्र मेरे एक वाक्य पर ध्यान दें, मुझे सब मानते हैं, इसलिए मानते हैं कि किसी के अहित में मैं बोलता नहीं। एक वाक्य ही रामबाण है। फिर से सुनिये - मुस्लिम तंत्र की आवश्यकता क्यों पड़ी विश्व को? विश्व में मुस्लिम तंत्र की उद्भावना क्यों हुई? क्रिश्चियन तंत्र की उद्भावना क्यों हुई? कम्युनिज्म की उद्भावना क्यों हुई? हम अपनी भूल स्वीकार करते हैं। अगर सनातन सिद्धांत को, धर्म को, अध्यात्म को, नीति को सनातन विधा से समझकर उसका अनुपालन किया गया होता तो विश्व में क्रिस्चियन तंत्र की आवश्यकता ही नहीं होती, मुस्लिम तंत्र की आवश्यकता ही नहीं होती, कम्युनिज्म की आवश्यकता भी नहीं होती। हमारा प्रमाद ही इन सब तंत्रों का जीवन है।

इसलिए किसी से भिड़ने की आवश्यकता नहीं। अपने प्रमाद को हम लोग दूर कर लेंगे तो किसी तंत्र की उपयोगिता ही नहीं रहेगी। किसी की उपयोगिता को आप नष्ट कर दीजिए, किसी की उपयोगिता को आप चुनौती दे दीजिए, किसी की उपयोगिता ही नहीं रहेगी तो वह तंत्र अपने आप समाप्त हो जाएगा।

एक उदाहरण देता हूँ - ***यावद् भ्रियेत जठरं*** - श्रीमद्भागवत के अनुसार जितने से पेट भर जाए, तन ढक जाए, देव-पितृ कार्य का सम्पादन हो जाए, उससे अधिक सम्पत्ति पर कोई अपना अधिकार मानता है तो **स स्तेनः** वह चोर है (भागवत में नारद जी का वचन, सातवाँ स्कन्ध) । कम्युनिज्म कहाँ से पलता जी? महाभारत का उद्योग पर्व ले लीजिए - दो प्रकार के व्यक्ति, अगर समझाने पर समझ नहीं आता उनको तो दण्डाधिकारी का दायित्व है तो उनके गले में मजबूत पत्थर बांधकर जलाशय में डुबा दे। यह हमारे यहाँ का सिद्धांत था। **धनवन्तं अदातारं दरिद्रं च अतपस्विन** धनी हो करके भी अपना धन यदि दस पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखना चाहता है, जहाँ-जहाँ धन का सदुपयोग करना चाहिए नहीं करता, दण्डाधिकारी का कर्तव्य है कि वजनदार मजबूत भारी गुरुत्वयुक्त पत्थर रस्सी से उसके गले में बांधकर जलाशय में डुबा दे। यह जब सिद्धांत हमारा क्रियान्वित था तो कौन कम्युनिज्म की धारा में बहता? क्षात्र धर्म हमारा जब क्रियान्वित था तो मुस्लिम तंत्र की क्या आवश्यकता होती? और एक प्रकार से सेवा का प्रकल्प हमारा रहता तो क्रिश्चियन तंत्र की आवश्यकता क्यों होती? और मैं संकेत करता हूँ - **दरिद्रं च अतपस्विनं ...** दरिद्र है, हाथ-पांव ठीक-ठाक है, काम करने योग्य परिस्थिति है लेकिन दाने-दाने के लिए मोहताज होने पर भी अगर उद्योग नहीं करता, धनार्जन का प्रयास नहीं करता तो ऐसे गरीब को, निर्धन को भी वही दण्ड देना चाहिए। यहां तक कि

महाभारत में लिखा है, कई जगह लिखा है **असाधुओं से पच्चीस** पीढ़ी के लिए धन जोड़ने वालों से, अन्याय पूर्वक धन अर्जन करने वालों से, शोषक जो धनी हैं उनसे धन को छीन कर के, ले कर के उचित जगह बाँट ले, उसका उपभोक्ता स्वयं न हो, मरने के बाद स्वर्ग में जाता है। मैंने एक दिन कहा था अर्थशास्त्र पर गोष्ठी के समय हम नित्य ही "कायव्य" डाकू का नाम लेते हैं यात्रा पर जाते हैं तो, आप भी डाकू का नाम लिया करो वेदव्यास जी की आज्ञा है महाभारत में। **कायव्य** का नाम जो लेता है तो उसको यात्रा में कोई असफलता नहीं मिलती। व्याघ्र, तस्कर आदि से भय नहीं, सब जगह आदर होता है, सम्मान होता है। गौतम ऋषि का नाम लेकर के जो यात्रा करता है उसकी यात्रा सफल होती है। कायव्य की क्या विशेषता थी? जो व्यक्ति 25 पीढ़ी तक के लिए धन इकट्ठा किए होते थे, बार-बार संवाद देने पर भी अगर वो धन संग्रह करते ही रहते थे, उचित जगह नहीं बाँटते थे, वो अपने गिरोह के द्वारा आक्रमण करा लेता, उनके घर की देवियों के शील का अपहरण नहीं करता, उनको मारता नहीं, बांधता नहीं, इतना धन उनके पास भी छोड़ देता जिससे कम से कम साल भर जीवन यापन कर सकें, अतिरिक्त धन लूट करके उचित स्थल पर बाँट देता, उसका उपभोक्ता नहीं होता। मरने के बाद उसका कायव्य नामक डाकू को स्वर्ग की प्राप्ति हुई और वेदव्यास जी लिखते हैं कि यात्रा के समय कोई उस डाकू का नाम लेता है तो उसकी यात्रा सफल होती है। **मैंने एक संकेत किया**

कि क्षात्र धर्म सही ढंग से हमारे यहाँ होता तो मुस्लिमतंत्र की क्या आवश्यकता थी? वैश्य धर्म हमारे यहाँ सही से अनुपालन होता, सेवा धर्म का सही से अनुपालन होता तो क्रिश्चियन तंत्र की क्या आवश्यकता थी? जो मैंने विधा बताई उसका पालन होता तो कम्युनिस्ट तंत्र की आवश्यकता क्या थी? किसी से संघर्ष लेने की आवश्यकता नहीं, अपने प्रमाद को समझ कर दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक धरातल पर हम अपने सनातन सिद्धांत को क्रियान्वित करें तो सब तंत्र अपने आप शांत हो जाएंगे और हमारे अनुगामी हो जाएँगे।

हर हर महादेव!

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

राजधर्म सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

(दिवस ३)

ऋग्वेद में राज्य शब्द का प्रयोग लोक और परलोक के अर्थ में हुआ है। यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से सैद्धांतिक निष्पत्ति हो, उसके क्रियान्वयन का प्रकल्प हो तो सर्वविध उत्कर्ष हो सकता है। फिर से सुनिए, **सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से सैद्धांतिक निष्पत्ति हो, उसके क्रियान्वयन का प्रकल्प हो तो सब प्रकार से उत्कर्ष हो सकता है।** व्यवहारिक धरातल पर मैं एक त्रुटि का अनुभव करता हूँ - **व्यक्ति के जीवन में भी आजकल सद्भावपूर्वक सम्वाद परिलक्षित नहीं है। परिवार में तो सद्भाव पूर्वक सम्वाद प्रायः लुप्त ही है। सामाजिक संघटनों में भी सद्भावपूर्वक सम्वाद लुप्त है।** तुलसीदास जी महाभाग का नाम मैं आस्था पूर्वक लेता हूँ। मेरे अनुरोध पर आप कभी विनयपत्रिका का अनुशीलन कीजियेगा, गिताप्रेस ने सरल हिंदी अनुवाद सहित उसको प्रकाशित किया है। **जो व्यक्ति अपने जीवन में सद्भावपूर्वक सम्वाद का आलम्बन नहीं लेता वो परिवार में सद्भावपूर्वक सम्वाद को प्रतिष्ठित कर ही नहीं सकता है और सामाजिक स्तर पर भी वह किसी उत्कृष्ट कार्य को करने में सफल**

नहीं होता है। महाभारत का मैं एक प्रसंग सुनाता हूँ - **"अहं गुरुर्महाबाहो मनः शिष्यं च विद्धि में"**। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का अर्जुन के प्रति यह संदेश और उपदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गुरु और शिष्य के सम्वाद से कुछ तथ्यों को अनुगीता के रूप में अभिव्यक्त किया। अर्जुन को लगा कि कभी इस प्रकार का सम्वाद गुरु और शिष्य के मध्य में हुआ होगा। भगवान् ने संकेत किया अर्जुन यह कोई इतिहास नहीं है, **"अहं गुरुर्महाबाहो मनः शिष्यं च विद्धि में"** - मैं ही गुरु हूँ और मेरा मन ही शिष्य है। मुझमें और मेरे मन में जो सम्वाद है उसी को मैंने गुरु शिष्य सम्वाद के रूप में तुम्हारे सामने अभिव्यक्त किया है। विनयपत्रिका का आद्यन्त अनुशीलन करें, एक निष्कर्ष निकलता है, ऊपर हम परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर को प्रतिष्ठित समझें, नीचे अपने मन को शिष्य के रूप में, सखा के रूप में, सेवक के रूप में स्वीकार करें। **मन के साथ हमारा सम्बन्ध कैसा होना चाहिए - मन को हम शिष्य समझें, सेवक समझें, या सखा समझें। "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"** का एक अर्थ यह भी होता है।

फिर से मैं संकेत करता हूँ - अपने मन को, ऐसा न करते हों तो आज से ही सखा के रूप में उद्भासित कीजिये, या सेवक के रूप में उद्भासित कीजिये, या शिष्य के रूप में उद्भासित कीजिये। **और अपने स्वामी के रूप में, माता के रूप में, पिता के रूप में, गुरु के रूप में भगवान् को मानिये। कभी अपने मन की शिकायत भगवान् के**

प्रति प्रकट कीजिये - मन को समझाता हूँ प्रभो लेकिन मन यह मानता नहीं है, जब तक आपका अनुग्रह नहीं होगा तबतक मन को मैं सन्मार्ग पर ले जाने में समर्थ नहीं होऊंगा। मेरे जीवन में इस प्रकार की दुर्बलताएँ हैं, मैं अपने बल पर उन दुर्बलताओं को कथमपि दूर नहीं कर सकूंगा, आपका अनुग्रह चाहिए। किसी समय भगवान् से सम्वाद कीजिये एकांत में, किसी समय मन को समझा कर उससे सम्वाद कीजिये। अपने जीवन में जब सम्वाद की प्रतिष्ठा होगी तो परिवार में भी आप सम्वाद की प्रतिष्ठा कर सकेंगे। कम-से-कम एक घण्टा नित्य ही परिवार के जितने सदस्य हैं आपस में बैठिए, और कुछ ना हो तो हनुमान चालीसा का पाठ ही कर लीजिये, मिलकर के एक दूसरे को कुशल पूछिए और किसी से कोई भूल हो गई हो तो बेखटके स्वीकार करने की भावना जगाइये। भ्रम पल रहा हो तो भ्रम को दूर करने का प्रयास कीजिये तो घर में रामराज्य की प्रतिष्ठा हो जाएगी। फिर से सुनिये - **प्रतिदिन परिवार के सदस्य जितने हों आपस में बैठिये, पाँच मिनट सही, सात मिनट सही भगवान् का संकीर्तन कीजिये - "हे अच्युत हे अनंत हे गोविंद, हे अच्युत हे अनंत हे गोविंद!" नहीं तो हनुमान चालीसा का पाठ ही कर लीजिये। फिर उसके बाद अगर कोई भूल हो गई हो तो बेखटके स्वीकार करके उसे दूर करने की भावना व्यक्त कीजिये। अगर आपके प्रति कोई भ्रम पल रहा हो तो उसको दूर कीजिये। भूल की स्वीकृति, उसके निवारण की प्रतिज्ञा और भ्रम का निवारण कुशल-**

मंगल पूछने का क्रम परिवार में चलाइये। **व्यक्तिगत जीवन में सम्वाद प्रारम्भ कीजिये, परिवार में सम्वाद कीजिये और सामाजिक स्तर पर, मैं एक संकेत करता हूँ, सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से अपने और अन्यों के हित में जो सिद्धांत निर्धारित हो उसको क्रियान्वित करने का प्रकल्प चलाइये।**

सफलता के सूत्रों पर भी मैं समय की सीमा में प्रकाश डालना उचित समझता हूँ। श्रीमद्भगवद्गीता गीता के १७वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का एक सन्देश है - भाव संशुद्धि, जिसको हम कुछ इस भावना से कह सकते हैं - "नियत हमारी शुद्ध होनी चाहिए"। **सफलता का प्रथम सोपान है भाव संशुद्धि अर्थात् नियत हमारी शुद्ध हो। अगर नियत में ही गड़बड़ी है तो कोई सफलता मिलेगी नहीं। उसके बाद नीति में भी शुद्धि होनी चाहिए। तीसरा चरण क्या है? नीति को क्रियान्वित करने की विधा भी हमारी स्वस्थ होनी चाहिए। फिर उस विधा को क्रियान्वित करने की टोली (टीम) के सदस्य भी कैसे हों? सदाचार सम्पन्न हों, संयमी हों, अनुशासित हों, सूझबूझ सम्पन्न हों तो पूर्ण सफलता मिलती है।** मैंने संकेत किया - नियत शुद्ध हो, सफलता के लिए प्रथम चरण है। जब मैंने श्री मोहन भागवत जी को यहाँ बताया तो बहुत प्रमुदित हुए, सभा में भी उन्होंने इसका उल्लेख किया। **नियत शुद्ध होनी चाहिए, नीति भी शुद्ध होनी चाहिए, और नीति को क्रियान्वित करने की process/**

विधा/ method को भी व्यवस्थित रखना चाहिए। फिर उस विधा को क्रियान्वित करने के लिए जो व्यक्ति का चयन करें, टीम (टोली) के जो सदस्य हों, वह सदाचार सम्पन्न हों, संयम सम्पन्न हों, सूझबूझ सम्पन्न हों और सक्रिय हों तो पूर्ण सफलता मिलती है। मैं किसी की आलोचना नहीं करता, समीक्षा तो करता हूँ लेकिन समीक्षा किसी पर दोषारोपण की भावना से नहीं करता। और सच्ची बात यह है कि बचपन से मुझको यह प्रशिक्षण दिया गया है पूरे देश में, समाज में, विश्व में अगर कोई त्रुटि है तो उस त्रुटि में तुम्हारा हाथ अवश्य है क्योंकि तुम्हारे रहने पर वह त्रुटि है, उस त्रुटि को दूसरे के ऊपर मत मढ़ो, अगर अपने दायित्व का निर्वाह करोगे तो त्रुटि के निवारण का मार्ग भी प्रशस्त कर सकोगे। लेकिन मैं एक वेदनापूर्वक संकेत करता हूँ - आज कोई भी दल सत्ता से च्युत हो या सत्ता में हो, अपने दल के भी सूझबूझ सम्पन्न मनीषियों का समादर नहीं है। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव में अनुगत शब्द क्या है महानुभावों? देव। देव माने परमात्मा। प्रतीकोपासना इसको कहते हैं शास्त्रीय शब्दों में। **सीधे तो देव माने परमात्मा का साक्षात्कार होता नहीं, मातृ देवो भव अर्थात् माता के रूप में उस देव को अभिव्यक्त समझो, पिता के रूप में उस देवता को अभिव्यक्त समझो, आचार्य के रूप में उस देवता को अभिव्यक्त समझो, अतिथि के रूप में उस देवता को अभिव्यक्त समझो, तब देवाराधन का मार्ग प्रशस्त होगा।** तो मैं देख रहा हूँ कि अपने दल में भी मेधा

सम्पन्न, सूझबूझ सम्पन्न जो व्यक्ति हैं, दल के हितैषी हैं, दल की नींव डालने वाले हैं उनकी उपेक्षा की जाती है। परिवार में माता-पिता की उपेक्षा की जाती है, इससे भारत की मेधा शक्ति का जितना सदुपयोग देश के हित में होना चाहिए उतना नहीं हो पाता। तो सद्भावपूर्वक सम्वाद का मार्ग अवरुद्ध नहीं करना चाहिए। कई देश आपस में भिड़ जाते और पूरे विश्व की क्षति का मार्ग प्रशस्त करते लेकिन हम देखते हैं कि अगर सद्भावपूर्वक सम्वाद उनसे चलता रहता है तो इस प्रकार की उत्तेजना का अंत हो जाता है या इस प्रकार की उत्तेजना दबी रहती है। **सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से सैद्धांतिक निष्पत्ति। निष्पत्ति का अर्थ है निर्णय।** अब सैद्धांतिक निष्पत्ति के लिए तो बहुत सूझबूझ चाहिए शास्त्र आदि का अध्ययन चाहिए। कम-से-कम जो शास्त्रज्ञ मनीषी हैं, त्रिकालदर्शी हैं उनका सान्निध्य चाहिए। **आजकल सद्भावपूर्वक सम्वाद ही नहीं है, सैद्धांतिक निष्पत्ति तो है ही नहीं।** कल मैंने एक संकेत किया था, इसको मैं बार-बार दोहरा रहा हूँ - छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें अध्याय के शाङ्कर भाष्य का वचन है कि जितने भौतिकवादी होते हैं इन्द्रियतादत्म्यापन्न उनका जीवन होता है, विषयलम्पट होते हैं, उनकी एक लाचारी होती है, उनके जीवन में कमजोरी होती है कि इन्द्रियों की पहुँच केवल वर्तमान तक होती है। इंद्रियों की गति भविष्य और भूत में होती नहीं। उनकी दृष्टि अत्यंत संकीर्ण होती है। लेकिन मन के बारे में मैंने कहा कल, मन की विशेषता क्या है? हमारे

आपके जीवन में जो मन हमको प्राप्त है, छान्दोग्य श्रुति के आठवें अध्याय के अनुसार वह दिव्यचक्षु है। आप श्रीम्भगवद्गीता से परिचित होंगे, भगवद्गीता में तीन प्रकार के चक्षु का वर्णन है - स्वचक्षु, दिव्य चक्षु, ज्ञान चक्षु। भगवान् श्रीकृष्ण ने तीनों प्रकार के चक्षु का वर्णन किया। "**न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।**" (गीता ११.८) और गीता के तेरहवें अध्याय के अंत में, पंद्रहवें अध्याय में ज्ञान चक्षु का वर्णन है। **क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।** और

"विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः"

ज्ञानचक्षु सबसे बढ़िया है, फिर बीच में है दिव्यचक्षु, स्वचक्षु तो अविद्या, काम, कर्म के कारण हम लोगों को प्राप्त ही है, उसे प्राप्त करने के लिए कोई पृथक् से प्रयास की आवश्यकता नहीं है। तो हमने एक संकेत किया - **मन हमारे आपके पास है, मन का सदुपयोग हम करें तो सिद्धों के सिद्ध, पीरों के पीर, मस्तों के मस्त, औलियाओं के औलिया, फकीरों के फकीर, अवधूतों के अवधूत हो जाएँ। मन में क्या क्षमता है? मन की गति वर्तमान, भूत, भविष्य तीनों कालों में होती है और मन अगर शुद्ध समाहित हो वेदान्त श्रवण से युक्त हो तो परमात्मतत्व में, भगवत्तत्व में, ब्रह्मतत्व में जो कि कालातीत है, उसमें भी मन की गति हो जाती है।** कल मैंने एक संकेत किया था वह **वेद की जो विशेषता है, मन की भी वही विशेषता है, इसलिए** तैत्तिरीय उपनिषद् ने मन में ही वेदों को

प्रतिष्ठित माना है। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व संज्ञक जो वेद हैं उनकी प्रतिष्ठा मन में है क्योंकि "*यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कारः एव* " (माण्डूक्य उपनिषद) और "भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति" (मनु स्मृति)। माण्डूक्य उपनिषद् और मनु स्मृति के अनुसार वेद की गति जितने कालगर्भित तत्व हैं सबमें है अर्थात् वेद सबके प्रतिपादक हैं। वेदों का जो बीज है प्रणव / एकाक्षर ब्रह्म / ओंकार, वो कालातीत परमात्मतत्व का भी अभिव्यञ्जक या ज्ञापक है। तो वेद कालगर्भित, कालातीत सब तत्वों के उद्भासक और ज्ञापक होते हैं। हमारे मन में भी वह क्षमता है कि हम कालगर्भित जितने तत्व हैं उसमें मन को लगा सकते हैं, कालातीत परमात्मा को भी प्राप्त कर सकते हैं। तो मैंने एक संकेत किया, सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से सैद्धांतिक निष्पत्ति हो और उसके क्रियान्वयन का प्रकल्प हो तो सब प्रकार से उत्कर्ष हो सकता है।

और भी केवल दृष्टि देना मैं उचित समझता हूँ, थोड़ा विचार कीजिये - मैं धीरे से बोल रहा हूँ कुछ गम्भीर तथ्य है, **हमारे वैदिक सिद्धांत को, मन्वादि शास्त्रसम्मत सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जिन्होंने लेकिन विधा / process / method कोई अपनी ओर से कल्पित कर ली, उन्हीं के पंथ में, मार्ग में, जीवन में विस्फोट हुआ।** फिर से मैं दोहरा रहा हूँ, यह एक गम्भीर तथ्य है और बहुत सरल शब्दों में बोलने का मैं प्रयास करता हूँ, सुनिये.... **सिद्धांत**

शास्त्रसम्मत, सिद्धांत को क्रियान्वित करने की विधा मनः कल्पित, इसी का नाम पंथ हो जाता है। हमारे वैदिक सिद्धांत को तो कोई मान ले, मानने के लिए विवश होगा। अगर वह अपना हित चाहता है, समाज का हित चाहता है तो वैदिक सिद्धांत को मानने के लिए उसे तत्पर होना ही पड़ेगा, ये उसकी लाचारी है। लेकिन सिद्धांत तो हमारा ले ले, सिद्धांत के क्रियान्वयन की विधा वो कोई अपनी जोड़ दे, उसी का नाम पंथ हो जाता है। पंथ वाले चारों खाने चित हो जाते हैं, मैं नाम किसी का नहीं लूँगा। मैं उदाहरण देता हूँ - पञ्चशील नाम से ख्याति है, योग दर्शन के अनुसार उसे पञ्च यम कहते हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। समय की सीमा में व्याख्या मैं नहीं करूंगा, केवल संकेत कर रहा हूँ, किसी की निन्दा में तात्पर्य मेरा नहीं है। अमुक-अमुक तंत्र ने पञ्च यम को पञ्चशील का नाम दिया। लेकिन ये जो पञ्चशील हैं या पञ्च यम हैं अब इनको जीवन में सहसा तो पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करना सबके वस की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में किस क्रम से इनको शनैः शनैः सत्य सहिष्णुता की क्रमिक अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रतिष्ठित करें, वो विधा सनातन धर्मियों के पास है। अहिंसा को किस ढंग से जीवन में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करें, सत्य को, अस्तेय को, ब्रम्हचर्य को, अपरिग्रह को। केवल ब्रम्हचर्य का नाम लेता हूँ - सबके बस की बात नहीं है कि विवाह किये बिना स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके, ईंट, पत्थर से सर फोड़कर मर जाएगा वह, काम का जब उद्रेक होगा। इसका

मतलब क्या है - पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन सबके बस की बात नहीं है। उच्छृंखलता तो कथमपि उचित नहीं है। यह जो विषय चल रहा है इसमें, छांदोग्य उपनिषद् के उद्घोष को तो आप जानते होंगे, नहीं तो जानने का प्रयास करें - **'न मे स्तेनो जनपदे....'** मेरे राज्य में। जनपद माने राज्य। राज्य का अर्थ मैंने किया ऋग्वेद के अनुसार लोक-परलोक दोनों का नाम राज्य होता है। कम-से-कम सप्त द्वीपा पृथ्वी को लेकर, मेदिनी को लेकर एक राजाधिराज ने कहा **'न मे स्तेनो जनपदे....' "मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, जुआरी नहीं है, शराबी नहीं है, कोई स्वेच्छाचारी व्यभिचार करने वाला पुरुष नहीं है, तो देवियों के शील को लाञ्छित करने वाला जब पुरुष नहीं है तो 'स्वैरिणी कुतः' अर्थात् मनचली औरत हमारे राज्य में सम्भव ही नहीं है।"** एक राजा दृढ़तापूर्वक कह सके ऐसी क्षमता तो बहुत ऊँची है ना। और भी है महाभारत आदि में, महाप्रलय के बाद जो प्रथम सतयुग होता है उसमें दिव्यता की पराकाष्ठा होती है, उसका वर्णन महाभारत आदि में किया गया है। न कोई राज्य था, न कोई राजा था, सबके सब ऐसे प्रबुद्ध थे, सत्त्वगुण नहीं शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न थे कि अपने आप सुव्यवस्थित ढंग से चलते थे। आजकल का उदाहरण ले लीजिये - यातायात, ट्रैफिक नियम जिसको कहते हैं, लोगों के ऊपर छोड़ दिया जाए तो रोज ही एक-एक जगह दस-दस दुर्घटना हो। लेकिन ऐसा युग जिसका वर्णन किया गया है कि उस समय न कोई राज्य था, न राजा था, इतनी सुव्यवस्थित प्रजा थी कि

अपने-आप जिस मार्ग पर चलना चाहिए, उस मार्ग पर चलने में समर्थ थी। तो राज्य की भी आवश्यकता नहीं थी, राजा की भी आवश्यकता नहीं थी, स्वचालित। सबके सब इतने संयमित थे। तो मैंने एक संकेत किया कि सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से सैद्धांतिक निष्पत्ति हो, उसके क्रियान्वयन का प्रकल्प हो तो..... मैंने कहा था अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। अगर आप लोग बुरा न मानें, केवल शिक्षा लेने के लिए तो मैं जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, ये सब मेरे लाडले प्यारे हैं सब, किसी से मैं द्रोह नहीं रखता, इन्होंने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को पञ्चशील के रूप में स्वीकार किया और पञ्चशील को जीवन में क्रमशः पूर्ण रूप से उतारने की जो हमारी विधा थी वेदादि शास्त्र सम्मत, उसको स्वीकार नहीं किया। उसके गर्भ से क्या हुआ - अहिंसा के गर्भ से घोर हिंसा निकल आयी। **अरे भारत का विभाजन भी तो अहिंसा के गर्भ से हुआ है ना, अहिंसा के नाम से हुआ है न। बुरा न मानो होली है। अगर शास्त्रसम्मत विधा का त्याग करके आप अहिंसा के पक्षधर होंगे तो यही सब होगा। लाखों व्यक्ति गाजर मूली की तरह मार दिये गए, काट दिये गए। वो अहिंसा के गर्भ से विस्फोट कैसे निकल आया?** इसी से सनातन शास्त्रों की विधा में आस्था होती है। **आप हमारे सिद्धांत का अपहरण कर सकते हैं। कोई भी हमारे सिद्धांत को अपनाए बिना रह नहीं सकता। लेकिन सिद्धांत को क्रियान्वित करने की विधा अगर आपके यहाँ मनः कल्पित है तो**

विस्फोट हुए बिना नहीं रह सकता। अहिंसा के गर्भ से घोर हिंसा निकल आयी नहीं अमुक-अमुक जगह? **सत्य के गर्भ से मिथ्या भाषण का ताण्डव नृत्य निकल आया या नहीं? अस्तेय के पक्षधरों के यहाँ चोरी करके धन एकत्र करने का व्यसन आ गया या नहीं? ब्रह्मचर्य के नाम पर अमुक अमुक संस्थानों में व्यभिचार की पराकाष्ठा हो गई या नहीं? अपरिग्रह के नाम पर पचास पीढ़ी तक धन बटोरने की भावना आ गई या नहीं?** इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू,ये कहानी नहीं चलेगी। सिद्धांत तो आपको हमारा लेना ही पड़ेगा। कोई भी समाज अहिंसा के बिना, सत्य के बिना, अस्तेय के बिना, ब्रह्मचर्य के बिना, अपरिग्रह के बिना चल ही नहीं सकता। किसी के जीवन में उत्कर्ष अहिंसा के बिना, सत्य के बिना, अस्तेय के बिना, ब्रह्मचर्य के बिना, अपरिग्रह के बिना संभव ही नहीं है। लेकिन पूर्ण अहिंसा की प्रतिष्ठा, पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा, पूर्ण अस्तेय की प्रतिष्ठा, पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा, पूर्ण अपरिग्रह की प्रतिष्ठा सबके जीवन में सम्भव नहीं है। मैं उदाहरण देता हूँ- मान लीजिये यह (पेन) है, इसको हम बाल के समान बनाना चाहेंगे, एकाएक तो नहीं बना सकते ना? इसी प्रकार से एक संकेत किया हमने कि अहिंसा को किस क्रम से जीवन में पूर्ण रूप से उतार सकते हैं, उसकी विधा का नाम सनातन वर्णाश्रमव्यवस्था है। **आप अहिंसा को वर्णाश्रमव्यवस्था के माध्यम से ढालेंगे तो धीरे-धीरे जीवन में उस**

बल और वेग का आधान होगा कि कालांतर में पूर्ण अहिंसक हो सकेंगे आप या हम। इस गोष्ठी से पहले विज्ञान पर गोष्ठी चली, उसमें तो देश-विदेश के वैज्ञानिकों ने भाग लिया, उसमें भी मैं था। फिर अर्थशास्त्र पर गोष्ठी चली, अब राजनीति पर, सबसे अधिक लाभान्वित मैं हूँ। लाभान्वित क्यों हूँ? कि सभी गोष्ठी में श्रोता तो मैं था ही, वक्ता तो बाद में। दूसरी बात ये है कि मेरे मन में था कि राजनेताओं के चपेट में स्वतंत्रता के पहले से लेकर अब तक वेदादि शास्त्रों के प्रति अनास्था इतनी हो गई होगी कि वैज्ञानिक, अर्थशास्त्र के जानकार, राजनीति के जानकार शास्त्रों को कोसे बिना नहीं रहेंगे। सबसे अधिक लाभ इन गोष्ठियों के माध्यम से मुझे ही हुआ, सब ने भूरि-भूरि वैदिक सिद्धांत की, सनातन सिद्धांत की सराहना की। व्यक्ति के चयन में भी हमारे व्यक्तियों ने बहुत ही सूझबूझ का परिचय दिया। लेकिन हमें एक बहुत बड़ा बल मिला है, बल तो पहले से रहता था, है और रहेगा, समर्थन बल को प्राप्त हुआ, पोषण बल को प्राप्त हुआ। अभी भी जितना बौद्धिक समझदार वर्ग है, सदाचार-संयम का पक्षधर वर्ग है और व्यक्ति है, उसके हृदय में सनातन वैदिक सिद्धांत के प्रति आस्था है। वह व्यक्ति और वर्ग इस बात को अच्छी तरह समझता है कि, ना केवल दार्शनिक अपितु वैज्ञानिक और व्यवहारिक धरातल पर भी एकमात्र उत्कर्ष का मार्ग वेद आदि शास्त्रसम्मत ही हो सकता है, कोई कल्पित विधा से व्यक्तिगत जीवन में या सामाजिक जीवन में उत्कर्ष प्राप्त ही नहीं कर

सकता। अहिंसा के गर्भ से, सत्य के गर्भ से, अस्तेय के गर्भ से, ब्रह्मचर्य के गर्भ से, अपरिग्रह के गर्भ से विस्फोट निकल आया। अब हमारे यहाँ देखिए- परम्पराप्राप्त विधा से अगर कोई ब्राह्मण और सन्यासी है (ब्राह्मण परिव्राजक कहते हैं), उसके ऊपर पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तेय, पूर्ण ब्रह्मचर्य, पूर्ण अपरिग्रह का नियम क्रियान्वित है। उसको पालन करने में, जीवन में उतारने में वह समर्थ भी है। इसका मतलब क्या हुआ? जैसे हम लोहे को अगर तार का रूप देना चाहें अर्थात् बारीक करना चाहें तो धीरे-धीरे से सकते हैं। अहिंसा को, सत्य को, अस्तेय को, ब्रह्मचर्य को, अपरिग्रह को जो धीरे-धीरे जीवन में उतारने की विधा सनातन ग्रंथों में है, उस विधा के प्रति आस्थान्वित न हो करके, जिन्होंने अहिंसा को, सत्य को, अस्तेय को, ब्रह्मचर्य को, अपरिग्रह को जीवन में उतारने का प्रयास किया, उनके यहाँ विस्फोट हो गया। इसी प्रकार से, बुरा ना मानो होली है, रामराज्य किसको नहीं पसंद? आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि भारत की अपेक्षा रामलीला चीन में अधिक होती है और रामचरितमानस के प्रति अभी भी प्रतिबंध चीन में नहीं है। रूस में भी रामचरितमानस पर अनुसंधान होता है। रामराज्य होना चाहिए, सनातन विधा में आस्थानवित जो व्यक्ति नहीं थे, उन्होंने रामराज्य का नाम तो लिया, प्रकल्प तो चलाया, रावणराज्य हो गया उनके यहाँ। इसका मतलब क्या हुआ? **आप हमारे सिद्धांत की चोरी करेंगे, हमारे सिद्धांत का अपहरण करेंगे, वैदिक लक्ष्य को निर्धारित**

करेंगे, लेकिन क्रियान्वित करने की प्रक्रिया / प्रोसेस/ मेथड या विधा मनः कल्पित करेंगे तो विस्फोट हो जाएगा। *नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥* - श्वेताश्वतरोनिपत् का वचन है। **सिद्धांत ही नहीं,** विधा भी हमारी ही अपनानी होगी। सिद्धांत हमारा लिये बिना तो काम चलेगा नहीं। आत्मनः **प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।** कोई ऐसा, जिसको अंग्रेजी वाले कहते हैं Highest Common Factor, अनुगत सिद्धांत होना चाहिए जो सबके जीवन में लाभकारी हो। **आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं सः योगी परमो मतः।।** ये सार्वभौम सिद्धांत हैं। जैसा व्यवहार हम दूसरों से अपने प्रति चाहते हैं, हमारी बुद्धि की बलिहारी है, कि हम दूसरों के प्रति वैसा व्यवहार करें। इसका मतलब एक हाथ से लो, एक हाथ से दो। अगर हम अच्छा व्यवहार करते हैं तो प्रतिक्रिया... to every action there is an equal and opposite reaction... गुरुत्वाकर्षण का तीसरा सिद्धांत। व्यवहार में भी क्रियान्वित होता है कि प्रत्येक क्रिया की समान और विपक्षी प्रतिक्रिया होती है, इसलिए हमने एक संकेत किया।

अब, राजा का बहुत बड़ा दायित्व होता है। साम नीति से ही शासन करना कठिन होता है, साम नीति माने समझा-बुझाकर काम लेना, सद्भावपूर्वक सम्वाद के माध्यम से काम लेना। तरह-तरह के व्यक्ति समाज में होते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार साम नीति के दो

भेद हैं - तथ्य साम और अतथ्य साम। तथ्य साम - किसी की आप प्रशंसा करते हैं, वह प्रशंसनीय जितने अंशों में है उतने अंशों में प्रशंसा करते हैं, उसको अपने अनुकूल करने के लिए, उसका नाम हो गया साम। कौन? तथ्य साम।

और किसी को पानी पर चढ़ाकर के अधिक प्रशंसा कर देते हैं, वह प्रशंसा सुनने का आदि है, उससे आप काम चला लेते हैं, इसका नाम हो गया अतथ्य साम। साम नीति से ही सब पर शासन करना या सबको सन्मार्ग पर लाना कठिन होता है, तो शासनतंत्र को चलाने के लिए साम नीति का भी ज्ञान होना चाहिए। दान नीति का भी ज्ञान होना चाहिए। कहाँ देकर काम बन सकता है, और दण्ड नीति का भी, बहुत कठोर काम है, महाभारत में लिखा है - अगर राजा को प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान इन सब प्रमाणों का सही से ज्ञान नहीं है, अर्थापत्ति आदि का तो राजा दण्ड देने में प्रमाद करेगा। एक तो दण्ड देने योग्य कोई हो ना, इस प्रकार का वातावरण हो, जैसे बुरा न मानें - अभी जब हर व्यक्ति को बाजार का सौदा बनाने के लिए तैयार किया जाता है, मोटी भाषा में कह रहा हूँ MSc. तक, पायलट की योग्यता प्राप्त करने तक, डॉक्टर, इंजीनियर की योग्यता प्राप्त करने तक, एक परिवार का कम से कम पचास लाख रुपया खर्च हो जाता है। *MLA / MP* होने के लिए भी बहुत बड़ी रकम चुकानी पड़ती है, जीत कर आने के लिए भी। इसका मतलब हर व्यक्ति को तो जानबूझकर ही शोषक बनाया जाता है। **पचास लाख**

रुपया खर्च करने के बाद अगर कोई आधुनिक विधा से दक्ष होता है, विद्या / कला में निपुण होता है, तो स्वाभाविक है पचास करोड़ पर हाथ हमारे बिना नहीं रहेगा। अगर पचास लाख रुपया खर्च करने पर कोई MLA / MP बनता है तो स्वाभाविक है कि वह राष्ट्र का शोषण किये बिना नहीं रहेगा। तो पहली बात यह है कि शोषक बनने के लिए मार्ग प्रशस्त हो, शासनतंत्र द्वारा ही जब व्यक्ति को विवश कर दिया जाता है, उदाहरण के लिए आश्रम है, बहुत मोटा उदाहरण देता हूँ - ४०० - ५०० तो गाय हैं, विद्यार्थी होते हैं, अतिथि होते हैं, देवाराधन होता है इतने से कम में काम नहीं चल सकता लेकिन सरकारी संविधान के अनुसार मालूम है? इतने से अधिक अगर आप खर्च दिखाते हैं तो आपको टैक्स लग जाएगा, टैक्स भरते रहिए, अगर टैक्स भरने में कमजोरी है तो घूस देते रहिए, इसका मतलब क्या हुआ? **न चाहता हुआ भी व्यक्ति बेईमान बनने के लिए बाध्य हो, यह तो संविधानगत त्रुटि है न! व्यक्ति मजबूर हो जाए शोषण करने के लिए, व्यक्ति झूठ बोलने के लिए बाध्य हो जाए, व्यक्ति झूठ बोल कर अपने जीवन की रक्षा कर सके, अपने परिवार का संचालन कर सके यह तो उचित नहीं है। तो शासनतंत्र में शोधन अपेक्षित है।** कि शासनतंत्र ऐसा कोई कानून ना बनावे, **नियम न बनावे, ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न ना करे, जो सन्मार्ग पर चलना चाहते हैं उनके लिए भी सन्मार्ग पर चलना दूभर हो जाए या दुर्लभ हो जाए,** आजकल है। और भीष्म जी ने सावधान किया - **राज्यं**

पण्यं न कारयेत् - राजा का दायित्व होता है कि राज्य को बाजार का सौदा न बनावे, प्रधानमंत्री जी भी हमारे बहुत लाडले प्यारे हैं, कान खोल कर सुन लें, भारत को बाजार का सौदा बनाया गया या नहीं ? भारत के उत्कर्ष का, नरसिंहराव के शासनकाल से जो हम देख रहे हैं, पहले भी कुछ था,... बाजार का सौदा भारत को बनाने पर आर्थिक दृष्टि से भारत उत्कर्ष को प्राप्त होगा.... भीष्म जी का वचन है ' राज्य को बाज़ार का सौदा न बनावे '। जिस देश में हर व्यक्ति को बाजार का सौदा बना दिया जाता है, बाजार का सौदा बनने के लिए ही शिक्षा दी जाती है, और जो देश स्वयं ही बाजार का सौदा बन जाता उस देश का उत्कर्ष कैसे होगा?

इसलिए हमने एक संकेत किया कि कुएं में भांग पड़ी... ऐसी स्थिति में बहुत ही व्यवस्थित ढंग से.... साम की हमने बात की - तथ्य साम और अतथ्य साम। समझा-बुझाकर काम चले तो दंगा फसाद की आवश्यकता नहीं है। कहीं-कहीं साम से काम ना चले तो दान। धन का उपयोग भी करना पड़ता है किसी को अनुकूल करने के लिए, फिर दण्ड का भी उपयोग करना पड़ता है और दण्ड भी बहुत विचित्र है। बिना दण्ड दिए काम चल सके, समझा-बुझाकर काम चल सके, फिर भी दण्ड दे दें तो दण्ड देने वाला दोषी होता है। अधिक दण्ड दे दें अपराध की अपेक्षा तो दण्ड देने वाला दोषी होता है। अपराध करने वाले को कम दण्ड दे दें तो दण्ड देने

वाला दोषी होता है। इसलिए दण्ड नीति को यथावत क्रियान्वित करना। महाभारत में यहाँतक लिखा है सन्यासी भी कितने ऐसे होंगे जो स्वतः संयमपूर्वक सन्यास धर्म का पालन कर सकेंगे? अगर दण्डनीति लागू न हो तो सन्यासी भी अपने धर्म का पालन ठीक-ठीक कर सकेंगे या नहीं यह भी कहना कठिन होगा। इसका मतलब? अगर राजा की दण्डनीति जागरूक है और दण्डनीति का दुरुपयोग नहीं, सदुपयोग करने में समर्थ है राजा तो राज्य का सञ्चालन सही ढंग से होता है। और भेद नीति भी राजा को चलनी पड़ती है। केवल साम नीति से ही राज्य का सञ्चालन नहीं हो सकता। भेद को तो आजकल वो अच्छी तरह जानते हैं। साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा। किसी की अपेक्षा। भारत सरकार ने अभी नेपाल को लेकर मुँह नहीं खोला, बढ़िया बात है। अभी उपेक्षा करो, ये बढ़िया है। कहीं-कहीं उपेक्षा का भी उपयोग होने लगता है। और कहीं-कहीं उपेक्षा का दुरपयोग भी ही जाता है तो राजा को इन सब नीतियों के प्रयोग में निपुण होना चाहिए। साम नीति का मर्मज्ञ, दान नीति का मर्मज्ञ, दण्ड नीति का मर्मज्ञ, भेद नीति का मर्मज्ञ और उपेक्षा। ये नीतियाँ तो प्रसिद्ध हैं, और भी हैं, मत्स्य पुराण के अनुसार, अग्नि पुराण के अनुसार बोल रहा हूँ.... इन्द्रजाल, मायावी। **साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा, इन्द्रजाल, माया।** कहीं उपेक्षा का आलम्बन लेकर ही काम सध जाता है और अंत में क्या है - इन्द्रजाल और माया। इन्द्र से इन्द्रजाल बना है उसके प्रयोग में इन्द्र देवता

बहुत दक्ष होते हैं और माया। शासनतंत्र द्वारा केवल साम नीति का प्रयोग करने से देश नहीं चल सकता। **परिस्थिति के अनुसार राजा को इतना निपुण होना चाहिए, जहाँ साम नीति का उपयोग करना चाहिए वहाँ साम नीति का उपयोग करें, जहाँ दान नीति का उपयोग करना चाहिए वहाँ दान का उपयोग करे, जहाँ दण्ड नीति का उपयोग करना चाहिए वहाँ चूके नहीं, और जहाँ भेद नीति का प्रयोग करना चाहिए वहाँ भेद नीति का भी प्रयोग करे, जहाँ उपेक्षा से ही काम चल जाए वहाँ उपेक्षा का ही प्रयोग करे, कहीं इन्द्रजाल का भी प्रयोग करना पड़ता है, कहीं माया का भी प्रयोग करना पड़ता है। सब प्रकार की नीतियों का मर्मज्ञ, उसके क्रियान्वयन में जो समर्थ होता है, वस्तुतः वह राजा राजा होता है शासक शासक होता है। अगर इन सब नीतियों का ज्ञान ही नहीं है तो फिर राष्ट्र को किसके ऊपर सौंपा जाए यह विचारणीय प्रश्न है।**

और हमने एक संकेत किया कि अभी जो मैं देख रहा हूँ - **शिक्षा पद्धति ही जब देहात्मभाव से भावित है, नीति और अध्यात्म से समन्वित शिक्षा पद्धति ही नहीं है, तब उस शिक्षा पद्धति के माध्यम से स्वतंत्र भारत में जो तीन चार पीढ़ियां हो गई हैं, उसके पास तो विकास और विनाश की परिभाषा समझने में ही कठिनता है।** मैं संकेत कर रहा हूँ - अभी जो का ढंग से, एक विचार मैं व्यक्त करता हूँ - स्वप्नावस्था में भी हमारे मन में जो संस्कार सन्निहित है,

हमारे मन में जो वासना सन्निहित है, उसका अतिक्रमण करके कोई घटना नहीं घट सकती। माण्डूक्यकारिका वैतथ्य प्रकरण के अनुसार मैंने एक वाक्य कहा - स्वप्नावस्था में भी मनोगत संस्कार, वासना योग्यता का अतिक्रमण करके कोई घटना नहीं घट सकती। इसका मतलब जिस ढंग की शिक्षा पद्धति होती है उसी ढंग से व्यक्ति का हृदय बनता है, मस्तिष्क बनता है, आचरण बनता है। अपनी भावना, अपनी योग्यता का अतिक्रमण करके व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। तो जो अभ्युदय निःश्रेयस का सचमुच में निष्कंटक मार्ग है, उसका तो ज्ञान आजकल की शिक्षा पद्धति के अनुसार संभव ही नहीं है। किन्हीं की कुल परंपरा अगर स्वस्थ है, वेद आदि शास्त्रसम्मत है तो माता-पिता आदि से सुनकर के या कुछ सद्ग्रन्थों का अध्ययन करके अपने आप को बचा सकते हैं लेकिन भारत में हो क्या रहा है? व्यक्ति का निर्माण ही उस ढंग से हो रहा है जो देहात्मभावभावित है, इसलिए उसका पर्यवसान विनाश में सुनिश्चित है। नीति और अध्यात्म गर्भित जब शिक्षा पद्धति नहीं होगी तो आर्थिक उत्कर्ष से लाभ होगा या हानि होगी? आर्थिक उत्कर्ष की चर्चा तो ठीक होनी चाहिए। राजनीति की परिभाषा की हमने - सुसंस्कृत हो, सुशिक्षित हो, सुरक्षित हो, सम्पन्न हो, सेवा परायण हो, स्वस्थ हो, सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाज की संरचना हो, इसी का नाम राजनीति वेद आदि शास्त्र के अनुसार है। लेकिन अर्थनीति.... परम अर्थ तो..

एक विचित्र बात है - कामसूत्र में जो पहला सूत्र है, वो काम पर नहीं है, अर्थ पर है। अर्थ में मनुष्य का भी नाम है। सोने-चांदी का ही नाम अर्थ नहीं है, मनुष्य का भी नाम है। **जिस ढंग की शिक्षा पद्धति चल रही है उस ढंग की शिक्षा पद्धति में तो व्यक्तित्व का समग्र विकास ही नहीं हो सकता है। अधिभौतिक, अधिदैवक, अध्यात्मिक धरातल पर विकास का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया गया है।** तो कम-से-कम भारत की विशेषता... हमारे पूज्य गुरुदेव धर्मसम्राट स्वामी श्रीकरपात्र जी महाभाग का एक ग्रंथ है गीताप्रेस से प्रकाशित - उसका नाम है भक्ति सुधा। उसमें एक लेख है.. **भारत में ही अवतार क्यों?** भगवान् तो सर्वव्यापक हैं, फिर भारत को ही अवतार के लिए क्यों चुनते हैं? उस लेख का सारांश है - भगवान् तो व्यापक हैं, लेकिन हमारे हृदयाकाश में ही क्यों व्यक्त होते हैं? ये जो रक्त कमल (पुंडरीक आकर रक्त मांस पिंड) है छाती में, उसके अंदर जो छेद है, आकाश है, उस आकाश में वो क्षमता है कि हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप अंतःकरण को व्यक्त कर सके, और जहाँ अंतःकरण होता है वहाँ परमात्मतत्व जो है वो प्रत्यगात्मा या जीवात्मा के रूप में व्यक्त होने में समर्थ होता है। अभिव्यंग की अभिव्यक्ति अभिव्यञ्जक के अधीन होती है, अभिव्यञ्जक के तारतम्य से अभिव्यंग की अभिव्यक्ति में तारतम्य होता है। जैसे विद्युत की अभिव्यक्ति बल्ब और बादल के अधीन होती है, बल्ब

और बादल के तारतम्य से विद्युत की अभिव्यक्ति में **तारतम्य होता है**। सब जगह भगवान् होने पर भी... फिर क्या है जी?.....**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ; अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ; ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।** हृदय को महत्व क्यों दिया गया? अब जहाँ-जहाँ आजकल बिजली के माध्यम से ट्रेन चलती है, उसमें एक ऊपर हिस्सा होता है, विद्युत के तार में तो विद्युत का प्रवाह है, स्पर्श करते ही ट्रेन में वह ऊर्जा आ जाती है कि ट्रेन गतिशील हो सके। तो भारत में ही भगवान् का अवतार क्यों? जैसे आपाद मस्तक भगवान् की व्याप्ति है, भगवान् तो शव शरीर में भी हैं, मुर्दा शरीर में भगवान् हैं या नहीं? भगवान् अगर व्यापक हैं, मानते हैं तो मुर्दा शरीर में भी भगवान् हैं। तो फिर मुर्दा शरीर को मुर्दा क्यों कहते हैं? अभिव्यञ्जक संस्थान उसमें नहीं है। कर्मेंद्रिय पंचक, ज्ञानेंद्रिय पंचक, प्राण पंचक, अंतःकरण चतुष्टय से रहित होने के कारण, अभिव्यञ्जक संस्थान न होने के कारण, जैसे अभी बिजली चली जाए तो बल्ब फ्यूज ना होने पर भी बल्ब के माध्यम से हमको विद्युत की प्राप्ति नहीं हो सकती, दो मिनट बाद बिजली आ जाए तो, बल्ब फ्यूज नहीं है तो, उसके माध्यम से विद्युत की अभिव्यक्ति हो सकती है। हमने संकेत किया.. जैसे भगवान् हृदय में ही अवतीर्ण होते हैं, ऐसे ही भारत को विश्व का हृदय माना गया

है, अगर भारत सुरक्षित रहेगा, दिशाहीन होने से बचेगा तो विश्व को भी दिशाहीन होने से बचाया जा सकता है।

एक संकेत और करते हैं....राजनीति के संदर्भ में.. भोजन। भोजन सबको चाहिए या नहीं ? तैत्तिरीय उपनिषद् - **'अन्नं बहु कुर्वीत'** राजा का दायित्व होता है, परिवार के मुखिया का दायित्व होता है **'अन्नं बहु कुर्वीत'** पर्याप्त अन्न का उत्पादन हो। अतिथि, अभ्यागत, देवता, पितर, परिवार के व्यक्ति, रिश्तेदार, नातेदार सबको अन्न के द्वारा पोषण करने के लिए भोजन। भोजन कहते ही कृषि विज्ञान भी आ जाता है। भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव, त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह आदि के प्रकल्प सब संतुलित ढंग से, सुसंगत ढंग से, परम्पराप्राप्त शास्त्रसम्मत विधा से क्रियान्वित हों, इन सब का दायित्व शासनतंत्र पर होता है। बुरा न मानो होली है... कुछ दिन पहले ये जो कोरोना है, इसके पहले मैं सोचता था, मेरी बात का कोई खण्डन नहीं करते लेकिन मन में कुछ सोचते होंगे। सनातन परम्पराप्राप्त कृषि विज्ञान, भोजन विज्ञान, भोजन बनाने की विधा, भोजन करने की विधा सबसे उत्कृष्ट। इस रॉकेट, कंप्यूटर, एटम और मोबाइल के युग में भी सनातन धर्मियों का भोजन विज्ञान सबसे उत्कृष्ट है। वस्त्र विज्ञान भी सबसे उत्कृष्ट है, आवास विज्ञान भी सबसे उत्कृष्ट है। मैं गरुड़ पुराण का नाम लेता हूँ आस्थापूर्वक - कूपोदक (कुएं का जो

जल होता है) गर्मी के दिनों में शीतल होता है और सर्दी के दिनों में उष्ण होता है। वटवृक्ष की जो छाया होती है वह गर्मी के दिनों में शीतल और सर्दी के दिनों में उष्ण। तो घर कैसे बनाना चाहिए इसकी भी हमारे यहाँ विधा है। वास्तुशास्त्र पर्याप्त हमारे यहाँ है। दिक्, शूल आदि... किस दिशा की ओर द्वार हो, किस दिशा की ओर न हो, सब वास्तु शास्त्र की दृष्टि से भवन, स्वाभाविक रूप से पवन की, प्रकाश की उसमें पहुँच हो, ऑक्सीजन पर्याप्त मिले, तो भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा... शिक्षा पर विचार कीजिये... **सुदामा जी और श्रीकृष्ण जी दोनों एक ही विद्यालय में थे। सुदामा जी को पढ़ने के लिए कितनी फीस देनी पड़ती थी? ना सुदामा जी को फीस देनी पड़ती थी ना श्री कृष्ण को। आज क्या सुदामा जी और श्रीकृष्ण जी एक विद्यालय में पढ़ सकते हैं?** सुदामा जी के समान जो होगा वह कहाँ से रुपये लाएगा M.Sc. इत्यादि करने के लिए? और शिक्षा पद्धति भी.... गुरुकुल की शिक्षा पद्धति इतनी परिष्कृत थी जिसमें 32 विद्या 64 कलाओं का ज्ञान होता था। आप विद्वान हैं, एक वाक्य में बोल दूं , विद्या और कला में क्या भेद है? शुक्रनीति के अनुसार वाणी की प्रधानता से जिसकी निष्पत्ति हो उसका नाम विद्या है। मूक व्यक्ति भी जिस कार्य का संपादन कर सके उसका नाम कला है। 32 विद्या 64 कला का प्रशिक्षण हमारे गुरुकुल के माध्यम से होता था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सब के सब इनमें निपुण थे। और शूद्रों को 64 कलाओं का विज्ञान दिया जाता था क्योंकि सारा सेवा

प्रकल्प, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग उनके पास सुरक्षित था। उनको विपन्न नहीं बनाया गया...यह भी एक भ्रम उत्पन्न किया गया... थोड़ा विचार कीजिये, जूता कौन बनावे, चप्पल कौन बनावे, तांबे का पात्र कौन बनावे? इसी प्रकार से जितने कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, सारा अर्थ का साधन जिनको दिया गया उनके नाम पर भ्रम उत्पन्न कर दिया गया कि आर्थिक विपन्नता का उनको शिकार बनाया गया।

पाँच-सात मिनट मैं और संकेत कर दूं.. जनसंख्या। मोदी जी भी जनसंख्या से चिंतित हैं। लेकिन थोड़ा विचार कीजिये.. अरे परिवार नियोजन के बिना, गर्भपात के बिना, अमङ्गल कृत्यों के बिना हमारे यहाँ जितने मनुष्यों की जनसंख्या होनी चाहिए थी उससे अधिक हो ही नहीं सकती थी, इसपर ध्यान गया आपका? ब्राह्मणों को कहा गया .... ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, और संन्यास आश्रम, इन चार आश्रमों में ब्राह्मण सामान्य रीति से अधिकृत माने गए। अब थोड़ा विचार कीजिये.... शिक्षाविद्... ब्राह्मणों का दायित्व क्या है? कालक्रम से विलुप्त ज्ञान विज्ञान को मेधा शक्ति , तपोबल से प्रकट करना, कालक्रम से विकृत ज्ञान-विज्ञान को विशुद्ध करना, सूत्रात्मक ज्ञान-विज्ञान को विशद करना, और शासनतंत्र का शोधन करना, व्यासपीठ का शोधन करना, दोनों में सैद्धांतिक सामञ्जस्य स्थापना, इतना दायित्व ब्राह्मणों को दिया

गया। तो ब्राह्मणों की जितनी संख्या होनी चाहिए स्वभाव से, वेद आदि शास्त्रसम्मत... संयम परायण. उससे ज्यादा हो ही नहीं सकती थी, ध्यान गया ? आजकल का वह हॉस्टल का जीवन नहीं, गुरुकुल का जीवन। सौ वर्ष की आयु यदि किसी की है, अगर वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है तो तीन आश्रम तो भोग राग से रहित हो गए - ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, संन्यास आश्रम। पच्चीस वर्ष की अवधि...३/४ आश्रम तो वैराग्य का हुआ, त्याग का हुआ, संयम का हुआ, १/४ आश्रम तो उनको गृहस्थाश्रम का प्राप्त हुआ... उसमें भी अष्टमी तिथि, ये तिथि, वो तिथि...रजस्वला कांड, ये कांड, वो कांड, वहाँ भी पत्नी का संस्पर्श ना हो, यहाँ तक कि संध्या की वेला में...पतिव्रता होने पर भी दिती ने बाध्य कर दिया अपने पतिदेव कश्यप जी को छूने के लिए... दो आतंकवादियों को जन्म दिया। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष क्यों जन्मे? पतिव्रता के गर्भ से जन्मे या नहीं? और श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण के तेज से उत्पन्न हुए या नहीं? आतंकवादी क्यों हो गए? काल का अतिक्रमण कर दिया, सांय वेला में पति का स्पर्श नहीं हो, पत्नी का स्पर्श नहीं हो। तो अब देखिए ब्राह्मणों की मेधा शक्ति सम्पन्न, ऊर्जा शक्ति सम्पन्न, पूरे विश्व को दिशा देने में समर्थ ब्राह्मण, उनकी संख्या जितनी होनी चाहिए, उससे अधिक हो सकती थी क्या? नहीं हो सकती थी। क्षत्रियों को कहा गया संन्यास आश्रम का दरवाज़ा मत खटखटाईए...गीता प्रमाण है.... आप भी संन्यासी बनेंगे, बुरा न मानो, दो क्षत्रिय कुल

के युवक होनहार, कहाँ चले गए? महावीर जी और नेपाल के बुद्ध जी... इन दो राजकुमारों ने अपने को क्षात्र धर्म से थोड़ा अलग कर दिया, बस हो गया... विश्व ही गर्त में पहुंच गया। क्षत्रियों से कहा गया आप अगर संन्यास की ओर जाओगे तो रक्षा व्यवस्था चरमरा जाएगी। युद्ध की कोई चुनौती दे दे, छाती में बाल हो, माँ का दूध पिया हो तो आजा। चाहे कल विवाह हुआ हो या कल विवाह होना हो, चिंता नहीं। अभिमन्यु कूद पड़े युद्ध में, 7 महीने पहले विवाह हुआ था। तो क्षत्रियों की जितनी संख्या होनी चाहिए उतनी होती ही थी, गर्भपात के बिना, परिवार नियोजन के बिना और वैश्यों की बात - उनसे कहा गया वानप्रस्थ आश्रम, संन्यास आश्रम का दरवाज़ा मत खतखटाइये। अगर आप भी वानप्रस्थ होंगे, संन्यासी होंगे तो क्या होगा मालूम है? कृषि, गौरक्ष, वाणिज्यज़ अर्थ के प्रकल्प सब संतुलित नहीं रहेंगे। शूद्रों से कहा गया सेवा का गुरुतर दायित्व, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग का गुरुतर दायित्व आपको प्राप्त है, अगर आप भी गुरुकुल का दरवाज़ा, वानप्रस्थ आश्रम का दरवाज़ा, संन्यास आश्रम का दरवाज़ा खटखटाएँगे तो सेवा और उद्योग के प्रकल्प सब शिथिल हो जाएँगे, तो जितनी उनकी संख्या होनी चाहिए उतनी ही होती थी।

राजधर्म सङ्गोष्ठी (जुलाई २०२०)

कल मैंने ये भी कहा था, एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से अरक्षित है। वहाँ आर्थिक विपन्नता और अनावश्यक विषमता स्वाभाविक है।

एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ हर व्यक्ति की जीविका जन्म से सुरक्षित है। वहाँ आर्थिक विपन्नता संभव नहीं, अनावश्यक विषमता सम्भव नहीं।

किसी भी दृष्टि से अगर हम विचार करके देखें तो अब तक के प्रवचन का निष्कर्ष क्या निकला जी? निष्कर्ष ये निकला... हम लोग क्यों निश्चिंत रहते हैं मालूम है? इस कोरोना संक्रमण की दशा में भी क्यों आनन्दपूर्वक रहते हैं? **नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ आप सिद्धांत हमारा लेने के लिए तो बाध्य होंगे। अगर मानवोचित शील की रक्षा करनी है तो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन सबको मानोगे ही। मानोगे लेकिन हम से परहेज करोगे, विधा अपनी मनः कल्पित चुन लोगे तो विस्फोट हो जाएगा। इसलिए हमारा सिद्धांत ही नहीं हमारी विधा भी अपनाने की उत्सुकता होनी चाहिए। विधा कोई मनः कल्पित लेकिन सिद्धांत हमारा तो भी काम नहीं चलेगा, विस्फोट हो जाएगा।**

और अंत में हम एक सुख का रहस्य बताकर प्रवचन को विराम देते हैं - शुक्राचार्य की क्या आवश्यकता थी जी? और

बृहस्पति की क्या आवश्यकता थी? अगर दैत्य, दानव, दनुज इन सब को शुक्राचार्य का नेतृत्व प्राप्त ना होता तो असमय में सबको खा जाते। मैं एक गम्भीर तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, सदाचार सम्पन्न, दैवीय सम्पदा के पक्षधर शुक्राचार्य के नेतृत्व की आवश्यकता क्यों थी उन लोगों को? जब-जब उन्होंने शुक्राचार्य को तिरस्कृत कर दिया या उनके नेतृत्व की आवश्यकता नहीं समझी, आँसू पोंछने वाला कोई नहीं रह गया। **मतलब दैत्य, दानव आदि भी शुक्राचार्य का नेतृत्व ना मानें तो उनकी दुर्गति हुए बिना नहीं रहती। इसका मतलब श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ जो महानुभाव होते हैं उन्हीं के हाथ में भगवान् पूरे विश्व का व्यवस्थित नेतृत्व सौंपते हैं। असुरों को भी केवल आसुरी सम्पदा पर नहीं छोड़ देते, उनको भी संयत रखने के लिए दैवी सम्पदा सम्पन्न आचार्य चाहिए।** अच्छा देवराज इन्द्र तो बहुत पराक्रमी होते हैं, शतक्रतु होते हैं, छल बल डंके की चोट से कोई देवराज इन्द्र के पद को प्राप्त कर सकता है क्या? लेकिन देवराज इन्द्र ने कुछ प्रमाद किया बृहस्पति जी का थोड़ा सा... एक प्रकार से सम्मान ना किया तो अपमान हो गया, बृहस्पति जी ने योग बल से अपने आप को तिरोहित कर लिया, भागवत पढ़िए.... एक हज़ार वर्ष तक इन्द्र के आँसू पोंछने के लिए कोई नहीं। नहुष ने पद पर भी कब्ज़ा कर लिया, मानसरोवर में छिपके रहना पड़ा। इसका मतलब, **देवराज इन्द्र को भी बृहस्पति जी का मार्गदर्शन चाहिए। आज कोई कह**

सकता है क्या कि देवराज इन्द्र के समान प्रधानमंत्री या कहीं के कोई राष्ट्रपति हैं ? देवराज इन्द्र को भी सुव्यवस्थित ढंग से चलने के लिए बृहस्पति जी का नेतृत्व चाहिए, आजकल कोई राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री कहें कौन होते हैं शङ्कराचार्य? सबको हम अपना चेला बना लेंगे, सब को हम अपना प्रचारक बना लेंगे, इससे काम चलेगा क्या? आज इतना व्यामोह हो गया है राजनेताओं को कि व्यासपीठ को भी अपनी मुट्ठी में रखना चाहते हैं माने आध्यात्मिक क्षेत्र को सहना नहीं चाहते। कोई ऐसा ना सिद्ध हो जाए कि शासन तंत्र को दिशा देने के लिए किसी आध्यात्मिक मनीषी की आवश्यकता है। **जब राम जी को आवश्यकता पड़ी, कृष्ण जी को आवश्यकता पड़ी, देवराज इन्द्र को आवश्यकता पड़ी, तो आपको आवश्यकता नहीं पड़ेगी यह कल्पना भी छोड़ दीजिए,** यह मैंने संकेत किया।

और एक गम्भीर तथ्य रख कर के मैं वक्तव्य को विराम देता हूँ - रामराज्य ऐसे नहीं आ जाता। समाधि की सिद्धि को व्यवहारिक धरातल पर अपने जीवन में और पूरे समाज में उतारने की क्षमता जिसके जीवन में हो वो रामराज्य की प्रतिष्ठा कर सकता है। राजा चाहिए न? राजा काल का कारण होता है। राम जी भगवान् के अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम, मैंने गम्भीर वाक्य कहा। **समाधि में जो सिद्धि मिलती है स्वभाव से, उस सिद्धि को व्यवहारिक जीवन में, अपने जीवन में और अन्यों के जीवन में प्रतिष्ठित करने में जो समर्थ**

है वो उत्तम शासन दे सकता है। **कितनी क्षमता हुई? अपने जीवन में उस सिद्धि को उतारो व्यवहार में, समाज में भी उस सिद्धि को उतार के दिखा दो, इतना तपोबल, ज्ञान-विज्ञान होगा तब वो उत्तम राज्य दे सकेगा।** एक उदाहरण देता हूँ- बारह साल का कोई युवक है, किशोर है मान लीजिये। बारह वर्षों के लिए निर्विकल्प समाधि लग गई, अब बारह वर्षों के बाद समाधि टूटी तो उसकी आयु बारह वर्षों की ही रहेगी। ध्यान गया? निर्विकल्प समाधि में प्रज्ञा शक्ति, प्राण शक्ति वृत्तिविहीन होकर प्रज्ञाशक्ति में प्राणशक्ति की तादात्म्यापत्ति हो जाती है, आयु में वृद्धि नहीं होती। अब ये क्या हुआ? निर्विकल्प समाधि से प्राप्त होने वाली सिद्धि हुई। अब आप तो सब आस्तिक हैं। आज अगर आपको या मुझको सनत्कुमार जी का दर्शन हो जाए तो क्या होगा? रामचरितमानस पढ़िए ... "देखत बालक बहु कालीना"। अभिव्यक्ति की दृष्टि से शिवजी के भी अग्रज होते हैं सनकादिक। ब्रह्माजी से शिव जी की अभिव्यक्ति बाद में हुई लेकिन सनकादिक की अभिव्यक्ति पहले हुई। लेकिन इस समय भी अगर सनकादिक हमको दिखाई पड़ेंगे तो "देखत बालक बहु कालीना"। आज भी अगर भगवान् शुकदेव जी किसीको दिखाई पड़ेंगे तो सोलह वर्ष के होंगे। परीक्षित को दिखाई पड़े तो सोलह वर्ष के। आज भी अगर सिद्धि के बल पर वह हमको दिखाई पड़े हैं तो सोलह वर्ष के होंगे। इसका अर्थ क्या हुआ जी? शुकदेव जी हैं, सनकादिक हैं इनकी क्या विशेषता है? निर्विकल्प समाधि में जो

सिद्धि प्राप्त होती है विचरण करते हुए, भिक्षा मांगते हुए, प्रवचन करते हुए, सुनते हुए, चलते हुए, फिरते हुए भी, समाधि की सिद्धि को उन्होंने अपने जीवन में उतार लिया है। व्यवहार दशा में भी उनकी आयु उससे अधिक बढ़ती नहीं है। जो समाधि की सिद्धि को अपने जीवन में व्यवहार काल में उतार दे **"अल्प मृत्यु नहि कबजिहूँ पीरा" ; "मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज"**

गाढ़ी नींद में न द्वंद्व की प्राप्ति होती है न व्याप्ति होती है। द्वंद्व की प्राप्ति होने पर भी व्याप्ति न हो। गाढ़ी नींद में न सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, न द्वंद्व की प्राप्ति है न व्याप्ति है। लेकिन गाढ़ी नींद में जो हमको आपको सिद्धि सुलभ होती है, वह अपने जीवन में व्यवहार में और समाज में उतार कर के दिखा दे, वो रामराज्य की, धर्मराज्य की प्रतिष्ठा कर सकता है। स्वप्नावस्था में हमारा-आपका आत्मचेतन से अधिष्ठित मन ही सर्व पदार्थो के रूप में उल्लसित हो जाता है। **"मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज" "दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा"** मैंने एक संकेत किया- जितना भी हमारे रामचरितमानस में, वाल्मीकि रामायण में रामराज्य का लक्षण है, वह है क्या? **समाधि की सिद्धि को, सुषुप्ति की सिद्धि को, स्वप्नावस्था की सिद्धि को और संयम दशा में प्राप्त सिद्धि को केवल अपने जीवन में ही नहीं, इतना तपोबल हो कि समाज में भी उतार के दिखा दे, तब वो उत्तम धर्मराज्य इत्यादि की प्रतिष्ठा होती है।** तो राजा काल

का कारण है। इसलिए भारत की भव्य रचना के लिए इस संगोष्ठी का समायोजन हुआ।

सुख का रहस्य भी मैं एक संकेत कर दूं - चार्वाक सिद्धांत में भी **सुखं जीवेत्** लक्ष्य है या नहीं उनका? उसके लिए संयम का मार्ग अपनाया। अभी तो भारत में चार्वाक कोटि का भी शासन नहीं है जी, वेदांत सिद्धांत के अनुसार तो शासन की वात छोड़ दीजिए। **ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्** - ऋण करेंगे तो मानवाधिकार की सीमा में उसको चुकाने की भी भावना रहेगी या नहीं? लूट करके थोड़ा... घृतं पिवेत् माने कोका कोला / पेप्सी ? तो चार्वाकों के जीवन में भी सुख की प्राप्ति के लिए जो संयम था वो तो... आजकल समाज में चार्वाकों का शासन भी नहीं है, फिर वेदान्त सिद्धांत के अनुसार शासन या रामराज्य की वात तो वहुत दूर है लेकिन मैं एक सुख का रहस्य संकेत में वताकर प्रवचन को विराम देता हूँ। **सुखमस्यात्मनो रूपम्** (श्रीमद्भागवत) ; **यो वै भूमा तत्सुखं** (छान्दोग्य उपनिषद)। सुखस्वरूप आत्मा है। अपनेआप में पराकाष्ठा की प्रीति आत्मा को परमानन्दस्वरूप सिद्ध करती है। मैं एक उदाहरण देता हूँ - अभी मेरी भावना हुई कि मक्खन खा लूँ , कल्पना कीजिये। वस्तु की उपलब्धि में, कामना की पूर्ति में सुख नहीं है। सुख का रहस्य पञ्चदशी के अनुसार वता रहा हूँ - कामना की निवृत्ति में सुख की अभिव्यक्ति है या कामना की पूर्ति में? वस इतना सा है। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद की विभाजक रेखा यही है। किसी

को मक्खन खाने की इच्छा हुई, मक्खन की प्राप्ति हो गई। **मक्खन** खाने की इच्छा होते ही, चित जो है दर्पण है (**चेतो दर्पण मार्जनम्**), चित रूपी दर्पण चञ्चल हो गया। इच्छा होते ही चित रूपी दर्पण चञ्चल हो गया। सुखरूप जो आत्मतत्व है, उस चित रूपी विक्षिप्त, चित रूपी दर्पण पर अभिव्यक्त नहीं हुआ। **दर्पण में लागी काई तो दरस कहाँ ते पाई ;**

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना;

अव कल्पना कीजिये कि मक्खन मिल गया तो मक्खन मिलने से, मक्खन के चखने से सुख मिला या मक्खन के मिलने पर मक्खन की कामना कट जाने के कारण सुख मिला? वस इतनी सी वात है। मक्खन मिलने पर मक्खन की कामना कट गई, कामना कट गई तो मन क्या हो गया? निर्मल, निश्चल दर्पण के सदृश हो गया। उसपर आत्मतत्व प्रतिफलित हो गया। मैं वृन्दावन में था, सामने एक आश्रम में टंकी खुली हुई थी, पानी भरा हुआ था। एक बंदरिया आयी, उसने यूँ झांका। पानी स्वच्छ था, निर्मल था, निश्चल था। उसको अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा, उसको लगा कि कोई प्रतिद्वंदी है। तो वो बंदरिया उस प्रतिबिम्ब को घूरने लगे और पानी को हिलाने लगे, तो पानी हिल जाए तो प्रतिद्वंदी कोई बंदर वहाँ दिखे नहीं। फिर शांत हो जाती थी और मैं मुस्कुरा रहा था देख कर के। फिर थोड़ी देर में जब जल निश्चल हो जाता था तो फिर उसमें प्रतिबिम्ब दिखने लगता था, तो फिर वह बंदरिया उसको नोचने के

लिए जल को हिलाने लगती। उसके बटालियन के जो बंदर थे कोई पिता होंगे, कोई पितामह होंगे, कोई पति होंगे कोई बेटा होंगे उन सबको रहस्य नहीं मालूम था। वह सब एक दूसरे को घूरने लगे, आपस में लड़ भिड़ गए, रक्तपात तक हो गया। हम हंसने लगे, बताओ घटना क्या है? घटना यूं है कि ज्यों ही वह जल स्थिर हो जाए त्यों ही उसमें प्रतिबिंब दिखाई पड़े हमारी आपकी कमजोरी क्या होती है? एक अभीष्ट विषय की कामना पालते हैं, मन को चञ्चल बना देते हैं, अभिष्ट विषय मिलने पर कामना की निवृत्ति होते ही मन स्थिर हो जाता है। आत्मतत्व जो सुखरूप है वह प्रतिफलित हो जाता है, फिर दूसरी कामना कर लेते हैं। इसका मतलब हमारे शास्त्रकारों ने कहा - भाई कामना को पालो, अभिष्ट वस्तु को प्राप्त करो, फिर उसका सेवन करो, फिर विषयांतर की कामना पालो, कामना की निवृत्ति से वास्तव में सुख की प्राप्ति है। मन को जितना निर्मल निश्चल करेंगे सुखरूप आत्मतत्व अभिव्यक्त होता चला जाएगा। **युक्त आहार-विहार के द्वारा सुखरूप आत्मतत्व की अजस्र अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करे, वो राजनीति है।**

नारायण

हर हर महादेव

सबका भला हो।